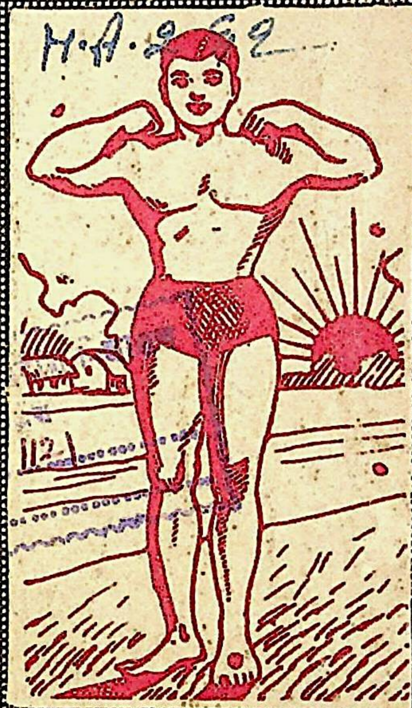
व्यायाम और शारीरिक विकास



श्यामसुन्दर रसायनशाला · वाराणसी

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।



श्यामसुन्दर आयुर्वेद-ग्रन्थमाला पुष्प : १७

व्यायाम और शारीरिक विकास

(पंजाब राज्य तथा बिहार राज्य के शिक्षा-विभाग द्वारा
पुस्तकालयों और विद्यालयों के लिए स्वीकृत)

लेखक

श्री अशोककुमार सिंह, आयुर्वेदशास्त्री, वेदालंकार, एम. ए.

('कोष्ठबद्धता', 'मानव-शरीर-परिचय', 'वैज्ञानिक प्राणायाम-रहस्य'
आदि पुस्तकों के रचयिता तथा ख्यातिप्राप्त व्यायाम-शिक्षक ।)

प्रकाशक

श्यामसुन्दर रसायनशाला प्रकाशन

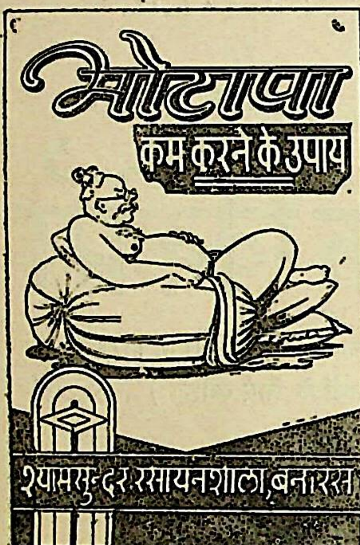
गायघाट, वाराणसी ।

मुख्य वितरक

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी ।

तृतीय संस्करण
दिसम्बर १९७२

मूल्य
तीन रुपये



मोटापा कम करने के उपाय

लेखक—पं० प्रभुनारायण त्रिपाठी
मू० ले०—पं० रामनारायण मिश्र
संस्करण ४ : पृष्ठ ६४ : मू० १.००

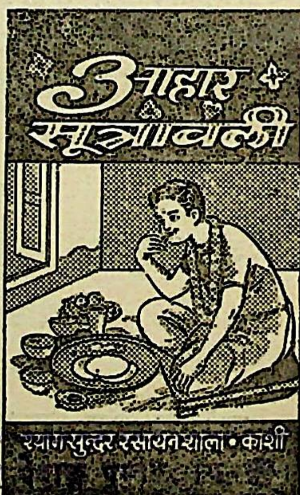
मोटापा शरीर के लिए अभिशाप है। यह शरीर को केवल भद्दा ही नहीं बनाता वरन् कार्य-शक्ति को क्षीण कर जीवन दूभर कर देता है।

मोटापा कैसे होता है? मोटापा से शारीरिक व्याधियाँ, मोटापानाशक व्यायाम, भोजन व औषधियाँ आदि नियमों का सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है। मेद-रोग वालों के लिए यह बड़े काम की सचित्र पुस्तक है।

आहार सूत्रावली

लेखक—पं० केदारनाथ पाठक
भूमिका लेखक—पं० दुर्गादत्त शास्त्री
संस्करण ४ : पृष्ठ ३२ : मू० ०-५०

प्रस्तुत पुस्तक में आहार की विशेषताओं के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया है। यह जनसाधारण की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। आज के युग में जब कि मनुष्य नाना प्रकार की बीमारियों का शिकार होता रहता है, जनसाधारण को आहार सम्बन्धी साधारण जानकारी होना अत्यावश्यक है। इस दृष्टि से यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। पुस्तक की भाषा सरल है।



दो शब्द

'व्यायाम और शारीरिक विकास' लेखक की कारयित्री प्रतिभा की अनुपम देन है। व्यायामचर्या के सभी अंगों का विद्वान लेखक ने यथेष्ट विवेचन किया है। स्वस्थ जीवन के लिए व्यायाम की उपयोगिता असन्दिग्ध है। यही कारण है कि अब स्कूल-कालेजों में इसको समुचित मान्यता प्राप्त हो गयी है। लेखक ने अपने विषय के प्रतिपादन में जीवन के सभी क्षेत्रों को सामने रखा है और बहुत ही मनोहारिणी शैली में अपना पक्ष उपस्थित किया है, जो लेखक की अपनी विशेषता है। हमारा निजी विश्वास है कि यह पुस्तक हिन्दी में अपने विषय की बेजोड़ है। भाषा, शैली और विषय-प्रतिपादन सभी दृष्टियों से पुस्तक उपादेय और पठनीय है। पाठ्य क्रम में इसका समावेश शिक्षाधिकारियों का कर्तव्य है।

ऐसी सर्वोपयोगी पुस्तक के प्रकाशन के लिए मैं लेखक और प्रकाशक दोनों को हार्दिक साधुवाद करता हूँ।

नागपंचमी
वाराणसी
५--८--६२

अर्जुनसिंह बी. काम. एल-एल. बी.
'व्यायामरत्न'
श्री काशी व्यायामशाला

प्रकाशकीय

काशी की "सुखमय जीवन-ग्रन्थमाला" के सञ्चालक श्री जगदम्बाप्रसादजी गुप्त ने इस पुस्तक के लेखक को क्रियात्मक स्वास्थ्य-विज्ञान सम्बन्धी सर्वोत्कृष्ट रचना होने पर ५००) का पुरस्कार प्रदान किया था। निर्णायकसमिति के सदस्यों में स्वनामधन्य सम्पादक स्व० पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर, पत्रकारप्रवर स्व० पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे और सम्पादकाचार्य पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी थे। आपलोगों ने मुक्तकंठ से पुस्तक की प्रशंसा की थी। निर्णायकों के प्रोत्साहन से हमने इसका प्रकाशन सन् १९५० में किया था।

पत्र-पत्रिकाओं और विद्वानों ने हमारे प्रकाशन का उत्साहवर्धक स्वागत किया है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रमुख व्यायाम-शिक्षक श्री एम. बी. देवनालकर ने इसकी उपयोगिता के बारे में जो सन्देश दिया है, उससे हमें बड़ा बल मिला है।

पुस्तक की सार्वजनिक उपयोगिता और मांग देखकर इसका तृतीय संस्करण किया गया है। प्रथम और द्वितीय संस्करण में मुद्रण सम्बन्धी जो त्रुटियाँ रह गयी थीं तथा पाठकों ने इस सम्बन्ध में जो भी सुझाव दिये थे, तदनुसार त्रुटियों का मार्जन कर दिया गया है।

जिन महानुभावों से, जिस किसी भी रूप में हमें प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है, हम उन सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं। विश्वास है, कृपालु पाठक वर्तमान संस्करण को अपनाकर पूर्ववत् हमें प्रोत्साहित करते रहेंगे।

— प्रकाशक

भूमिका

- इस वैज्ञानिक युग में सभी बातों को वैज्ञानिक आधार पर खड़ा करने की कोशिश की जाती है। व्यायाम सदा से ही एक वैज्ञानिक साधन रहा है। उन्नत देशों तथा उन्नत भाषाओं में व्यायाम पर इसी वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत कुछ विचार किया गया है, जिसके फलस्वरूप व्यायाम पर उत्तम-उत्तम ग्रन्थ उन-उन भाषाओं में उपलब्ध हैं। इतना ही नहीं, अपितु उन ग्रन्थों तथा विशिष्ट व्यक्तियों के प्रभाव से व्यायाम की बड़ी-बड़ी संस्थायें चलती हैं। यूरोपीय भाषाओं में व्यायाम सम्बन्धी साहित्य प्रचुरता से पाया जाता है। मासिक व साप्ताहिक पत्र-पत्रिकायें भी उच्चकोटि की प्रकाशित होती हैं, जिनसे सर्वसाधारण की व्यायाम के प्रति रुचि व ध्यान बना रहता है। हिन्दी में अभी इस विषय की पुस्तकों की बहुत कमी है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि हमारे देश के शिक्षित पुरुषों का ध्यान व्यायाम की ओर नहीं के बराबर है। इन पढ़े-लिखे लोगों की अपेक्षा तो ग्राम के लोगो में व्यायाम व पहलवानी का प्रचार अधिक है। यदि शिक्षित वर्ग में व्यायाम के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाय तो अवश्य ही स्थिति सुधर सकती है। कुछ समय पूर्व संगीत-विद्या का भी यही हाल था। वह समाज के निम्न पेशेवालों की चीज समझी जाती थी। सुशिक्षित और कुलीनवर्ग में अब सङ्गीत ने अपना उचित स्थान पा लिया है। क्या व्यायाम-कला के लिये भी ऐसी स्थिति की आशा की जा सकती है।

इस पुस्तक के लिखने का सर्वप्रथम उद्देश्य यह है कि हिन्दी में एक ऐसी पुस्तक हो, जो सर्वसम्मत, सरल, वैज्ञानिक व्यायाम पद्धति पर प्रकाश डाले जिससे सुशिक्षित एवं प्रगतिशील समाज के लोग अपनी दिनचर्या में व्यायाम को उचित स्थान दे सकें। घी, दुग्ध व स्वच्छ वायु का युग

अब समाप्त हो गया है; वनस्पति घी और फैक्टरियों के धुएँ का युग चल रहा है। इसलिये लोग अनायास दीर्घजीवी व स्वस्थ होते रहेंगे, यह ख्याल छोड़ देना चाहिये। आज पहले से कहीं अधिक हमें स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए सजग रहना होगा। अतः इस प्रकार के जीवनदायक साहित्य की अत्यन्त आवश्यकता है। दुर्भाग्य से हमारे जन-साधारण में यह भावना बद्धमूल है कि—"व्यायाम बच्चों और अपढ़ लोगों की चीज है, सुसंस्कृत समाज में इसका क्या काम? और, यदि कभी कोई इस प्रकार की आवश्यकता हुई भी तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी सहज शक्ति और मति के आधार पर सामान्य उठक-बैठक कर ही सकता है। अतः इसकी ओर विशेष ध्यान देने की भी क्या आवश्यकता?" इस भावना का यह प्रभाव है कि स्वास्थ्य के नियमों को जानने और उन्हें पालन करने का कष्ट उठाना कोई भी गवारा नहीं करता, जिसके बुरे परिणाम हमारी आँखों के सामने हैं।

इस पुस्तक में शरीर-क्रिया-विज्ञान के वर्णन के साथ-साथ व्यायाम के आधारभूत सिद्धान्तों का दिग्दर्शन कराया गया है ताकि वे बातें पाठकों को हृदयङ्गम हो जायें। व्यायाम के कुछेक अभ्यासों का केवल संग्रहमात्र न रखकर, इस प्रकार के वैज्ञानिक आधारों को प्रतिपादित करना आवश्यक हो जाता है। जब तक व्यायाम क्यों करना चाहिये व कैसे करना चाहिये---इसका पूरा वैज्ञानिक आधार समझ में नहीं आयेगा, तब तक व्यक्ति व्यायाम को स्थिरतापूर्वक अपनी दिनचर्या में स्थान नहीं दे सकता। और, इसके बिना लाभ की आशा भी नहीं। इसलिये किसी भी कार्य को करने के पूर्व उसकी महत्ता भली प्रकार जान लेनी चाहिये। इस पुस्तक के अध्ययन से स्वास्थ्य प्राप्ति की तीव्र लालसा जागृत होकर उपायों का भी ज्ञान होगा, जो कि उन्नति के लिए सर्वप्रधान आधार कहा जा सकता है।

व्यायाम के सभी अभ्यास, जो यहाँ पर दिये गये हैं, अत्यन्त सरल हैं। निर्बल और सबल सभी प्रकार के व्यक्ति उन्हें प्रयोग में लाकर उनसे लाभ प्राप्त कर सकते हैं। प्रस्तुत पुस्तक का अध्ययन करने पर व्यक्ति में

इतनी योग्यता अवश्य पैदा हो जायगी कि इन अभ्यासों को कितनी मात्रा में करके अपनी उम्र व स्थिति के अनुसार लाभ उठाया जा सकता है।

स्वास्थ्य-प्राप्ति तथा स्थिरता के लिए न केवलमात्र व्यायाम ही, अपितु अन्य बहुत-सी बातें भी आवश्यक हैं। उन सब का विशद विवेचन किया गया है। केवल उठ-बैठ करने से ही स्वास्थ्य प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिये व्यायाम-चर्या के सभी अङ्गों, जैसे--भोजनशास्त्र, प्राणायाम, धूप-स्नान, तेल-मालिश और भ्रमण आदि का विवेचन करना आवश्यक था। साथ ही ब्रह्मचर्य पर भी, जिसकी नींव रूप से आवश्यकता रहती है, पूरा जोर दिया गया है।

अन्तिम अध्याय "स्त्री-पुरुषों की अवस्थानुसार व्यायाम" शीर्षक से दिया गया है। इसमें स्त्रियों के लिए भी आवश्यक निर्देश देकर यह प्रतिपादित किया है कि वे किस प्रकार से व्यायाम को आवश्यक रूप से अपनी दिनचर्या में सम्मिलित कर उनसे लाभ उठा सकती हैं। अवस्था-भेद से बालक, किशोर, युवक, प्रौढ़ और वृद्धजन कैसे इस एक ही सरल पद्धति से स्वस्थ और बलवान् रह सकते हैं। इस प्रकार पुस्तक को अधिक व्यापक और उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है।

हमारे समाज में और सौभाग्य से उन्नति-प्राप्त व्यायामशीलों का भी एक वर्ग है। उनके लिये यह पुस्तक प्रचुर मात्रा में स्वाध्याय-सामग्री उपस्थित कर सकेगी, ताकि वे और अधिक उन्नति की ओर अग्रसर हो सकें। इसके अतिरिक्त लम्बी दुःखदायी बीमारियों में फँसे लोग भी हैं, जो अप्राकृतिक चिकित्सा कराते-कराते किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये हैं। उनके लिये इस पुस्तक में आशा का सन्देश है। 'व्यायाम-चर्या' का द्वार उनके लिये खुला है। वे स्वास्थ्यप्रद नियमों को समझ तथा उपयोग में लाकर दिव्य स्वास्थ्य का लाभ उठा सकते हैं।

मुझे अनेक विद्वानों की पुस्तकों से पूरी-पूरी सहायता मिली है। मैं उनका हृदय से आभार मानता हूं। यदि इस तुच्छ प्रयत्न से देश के 'जीवन निर्माण' के आन्दोलन में कुछ भी स्फूर्ति मिली तो मैं अपना प्रयत्न सफल समझूंगा।

—लेखक

विषय-सूची



व्यायाम और शारीरिक विकास

व्यायाम-द्वारा शारीरिक विकास

भारतीय नरेशों को देखकर भारत की गरीबी का, रवीन्द्र की प्रतिभा से भारत की शिक्षा का और राममूर्ति व गामा की जगत्प्रसिद्ध ख्याति से भारत के स्वास्थ्य का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। भारत की निर्धनता, अशिक्षा और निर्बलता के ऐसे आँकड़े पेश किये जा सकते हैं, जिन पर बीसवीं सदी का व्यक्ति सहज में विश्वास नहीं कर सकता। रेल और तार के युग में भी इतनी भीषण दुर्दशा! परन्तु बात सच है; विश्वास करना पड़ता है। १०० पीछे ८८ मनुष्य इस देश में सर्वथा निरक्षर हैं, शेष शिक्षित कहे जाने वाले १२ व्यक्तियों में ऐसे भी सम्मिलित हैं; जो केवल नाम लिखना जानते हैं। ठीक प्रकार शिक्षित समझे जाने वाले थोड़े-से व्यक्तियों ने ऐसी शिक्षा प्राप्त की है, जिसे शिक्षा नाम देते हुए लज्जा आती है।

माननीय श्री विश्वनाथ प्रसाद जी, भूतपूर्व शिक्षा-सचिव, उड़ीसा ने वर्धा के शिक्षा-सम्मेलन में कहा था---

"वह शिक्षा, जो न राष्ट्रीय हो न उपयोगी, शिक्षा नहीं कही जा सकती। वर्तमान शिक्षा भी इन दोनों में से कोई नहीं है। जो शिक्षा

हमें कालेजों और स्कूलों में दी जाती है, वह निर्माणकारी प्रतिभा को नष्ट करने का अच्छा साधन है।"

गांधीजी ने वर्तमान दूषित शिक्षा के प्रति अपना दृष्टिकोण निम्न वाक्यों में वर्धा-शिक्षा-सम्मेलन के अवसर पर प्रकट किया था—

"मुझे स्वीकार करना पड़ता है कि वर्तमान शिक्षा-पद्धति केवल व्यर्थ ही नहीं है, अपितु क्रियात्मक रूप से हानिकर भी है। बच्चे बुरी आदतों, कुसङ्गतों और शहरी दूषित बातों को सीख जाते हैं और...... एक ऐसी बेहूदगी के अभ्यासी हो जाते हैं, जो कि शिक्षा के अतिरिक्त और कुछ है।"

देश की दरिद्रता को चित्रित करने से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में उदाहरण ढूँढ़ने के लिए दूर नहीं जाना पड़ेगा। हर गाँव, कस्बे और शहर में दरिद्रता के हृदय-विदारक दृश्य देखे जा सकते हैं। कुछ वर्ष पूर्व 'इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया' में—किन्हीं साहब के शिमला-शैल-शिकार का वर्णन छपा था। जानवर के धोखे एक पहाड़ी युवती के पैर में गोली लगी। बहादुर साहबों ने उसे इसके बदले कुछ चाँदी के टुकड़े देकर बिदा किया। जब साहब लोग निश्चिन्त होकर बैठे तो उस युवती का पति उसे साथ लेकर आया और साहब लोगों से उसने प्रार्थना की कि—"कृपा कर इसके दूसरे पैर में भी गोली मारने का आनन्द उठाइये; मुझे इसके बदले में रूपये दे दीजियेगा।" जिस देश के लोगों की वार्षिक आय प्रति व्यक्ति २२॥ रुपये मात्र हो, वहाँ ऐसा होना स्वाभाविक है।

दरिद्रता और अशिक्षा की सहायक सेनाओं के द्वारा गुलामी अपना सर्वग्रासी पञ्जा मजबूती से फैलाती है। ऐसी स्थिति में देश के स्वास्थ्य की कुछ भी आशा करना बेकार है। हँसमुख-प्रफुल्लित-चुस्त चेहरों की जगह सर्वत्र फैलने वाली बीमारियों से पीड़ित नर-कंकाल ही मिलेंगे; आप

कोई लम्बी यात्रा कीजिये। मार्ग में लाखों व्यक्ति मिलेंगे; पर कितने स्वस्थ, तन्दुरुस्त जवानों को आप देख सकेंगे ? हमारी कितनी नादानी है कि सर्वथा रोके जा सकने वाले संक्रामक रोगों से लोग कीड़े-मकोड़ों की तरह मर जाते हैं ! १९३९ ई० में ६१६५२३४ मृत्यु-संख्या थी, जिसमें से १४११६१४ मलेरिया, ४८१०३ चेचक, ९७५६६ हैजा और २६०३०० पेचिश से हुईं। स्त्रियों में क्षय रोग तेजी से बढ़ता जा रहा है। पर्दा-प्रथा ने शहर की स्त्रियों के स्वास्थ्य को तो सर्वथा नष्ट कर दिया है।

भारत में औसत आयु प्रति व्यक्ति २७ वर्ष है जब कि इंगलैण्ड की ६३ वर्ष है और न्यूजीलैण्ड की लगभग ६६ वर्ष। जापान का प्रति व्यक्ति ४७ वर्ष जीवित रहता है। इसके लिए हम विदेशी शासन को दोष दे सकते हैं, पर हमारी मूर्खता भी कम नहीं है। बाल-विवाह हम बड़ी धूमधाम से रचते हैं। पता नहीं, कितनी खुशियाँ मनाते हैं ! इस बाल-विवाह से तो हमारी नस्ल ही बिगड़ गई है।

एक बात और। भारत में जितने पुराने रोगी मिलेंगे, उतने शायद अन्यत्र कहीं नहीं। इसका कारण यह है कि यहाँ के निवासियों की जीवनी शक्ति इतनी क्षीण हो गई है कि वे मामूली रोगों का मुकाबला करने में भी समर्थ नहीं हैं। प्रायः लोगों को कहते सुना है कि गली-गली डाक्टर-वैद्य हो गये हैं और रोग फिर भी बढ़ते ही जाते हैं। पर वास्तव में ४० करोड़ की आबादी के लिए डाक्टर और वैद्यों की अभी बहुत ही कमी है। डाक्टर लोग रुपये को लालच से शहरों में ही भीड़ करते हैं; अभागे ग्रामों की ओर कोई ताकता तक नहीं।

देश का स्वास्थ्य क्षीण होने के कारण व्यक्तियों की कार्य-शक्ति भी न्यून हो गई है। कार्यालयों में सर्वत्र शिकायत की जाती है कि हिन्दुस्तानी आदमी दूसरी जाति के मनुष्यों के मुकाबले में कम उपयुक्त होता है। अमेरिका का कोयला खोदने वाला मजदूर जब कि औसतन ५८९ टन कोयला निकालता है, तब भारतीय केवल ८० टन ही निकाल पाता है।

कई बार इसका दोष भारत के गरम जलवायु को दिया जाता है। यह तो साम्राज्यवाद की प्रचारात्मक इतिहास-पुस्तकों की कहानी मात्र है। असली कारण भारत का गिरा हुआ स्वास्थ्य ही है।

इंगलैण्ड के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री चर्चिल ने पार्लियामेण्ट में भारत की बढ़ती हुई आबादी का, साम्राज्य की समृद्धि व सम्पन्नता का सूचक बताते हुए, बड़े गर्व के साथ उल्लेख किया था। परन्तु, परिमाण की वृद्धि से उत्तमता की वृद्धि का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। गाँधीजी के शब्दों में "नपुंसक, निर्बल सन्तान देश व जाति के लिए भार-स्वरूप है।" डा० डब्ल्यू० बरिज ने अपनी पुस्तक 'Climate and labour' में बढ़ती हुई भारत की आबादी का एक मनोरञ्जक कारण ढूँढ़ निकाला है। वे कहते हैं कि आबादी की अधिकता के कारण लोगों के पास काम कम हो गया है; अतः निश्चिन्तता से लोग घर-गृहस्थी बढ़ाने में लगे हुए हैं।

परन्तु यह बात सर्वसम्मत है कि भारत में स्वास्थ्य की दशा शोचनीय है। शहरों में मकानों की कमी व घिचपिच होने से स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। पढ़ने वाले स्कूलों के अधिकांश विद्यार्थियों को शुद्ध दूध नहीं मिलता। विद्यार्थियों के माता-पिता अपनी जीविका के कठिन संघर्ष में लगे रहते हैं। स्कूल के अधिकारी, विद्यार्थियों के शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति अपने उत्तर-दायित्व को बिलकुल ही नहीं समझते। स्कूल भी अधिकतर अस्वास्थ्यकर शहर के भीतर ही होते हैं। ऐसी अवस्था में विद्यार्थी वर्ग का स्वास्थ्य कैसे स्थिर रह सकता है? झुकी कमर और आँखों पर चश्मा,—ये दोनों विद्यार्थियों के जरूरी लक्षण हो रहे हैं।

दूसरी तरफ कल-कारखानों के मजदूरों के स्वास्थ्य की कथा भी वैसी ही है। स्वास्थ्यकर मकान व बगीचे उन्हें उपलब्ध कहाँ? काम करते-करते बीमार पड़ जाते हैं और मर जाते हैं। पीछे, देश के लिए कई निर्बल बच्चे विरासत में छोड़ जाते हैं। यही अन्तिम गति है।

रहे ग्राम के लोग। उनके लिए 'सुखी जीवन' नाम की कौन सी वस्तु है? यह कहना कठिन है। सन् १९४२ में क्लाइव ब्रान्सन नामक एक अंग्रेज, मानवीयता का पुजारी, सेना में भर्ती होकर आया। उसने भारत की लज्जाजनक परिस्थिति का आँखों-देखा चित्र अपनी पत्नी को पत्र में लिखा। वह लिखता है—"हम लोग कई गाँवों के पास से गुजरे, जिनमें आदमी घरौंदों में रहते हैं। मिट्टी का फर्श, पुराने पत्थर की दो

दीवारों पर टिकी एक क्षीण छत—बाँस की खपच्चियों पर छाया हुआ छप्पर, जिस पर टिन के टुकड़े, पुराने चियड़े, कुछ कपड़े आदि टँगे—जिनमें आदमी सिर्फ उकड़ू बैठ सके······इन्हीं को लाखों आदमी घर कहते हैं। ·········नाइन एलमस के लोगों को मैं कैसे बतला सकता हूँ कि उनके गन्दे मकान भी भारतीय बस्तियों के मुकाबले में महल हैं।"

ऐसी परिस्थिति में ईश्वर ही रक्षक है! अशिक्षा, दारिद्रय और दासता के दिनों की ये देनें हैं!

किसी समाज का स्वास्थ्य निम्न तीन बातों पर निर्भर है—(१) रहने का स्तर जितना उच्च होगा, उतने ही अच्छे स्वास्थ्य की आशा की जा सकती है। (२) सार्वजनिक स्वास्थ्य को बढ़ाने, उसकी रक्षा करने और रोगी होने पर परिचर्या करने के लिए जितनी अधिक सुसंगठित संस्थायें होंगी, उतना ही अच्छा स्वास्थ्य होगा। (३) उत्तम और उच्च शिक्षा समाज के स्वस्थ जीवन के लिए सर्व प्रथम आवश्यक है। दुर्भाग्य से हमारे देश में इन तीनों में से एक भी सुविधा उपलब्ध नहीं है। इन तीन बातों में से प्रथम दो का सम्बन्ध अधिकतर सीधा सरकार से है। तीसरी वस्तु के प्रसार के लिए सभी लोग प्रयत्न कर सकते हैं। किसी बुराई को दूर करने के लिए शिक्षा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन है। स्वास्थ्य की शिक्षा तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है, ताकि हरेक अपने शारीरिक विकास की ओर ध्यान दे सकें।

शारीरिक विकास के लिये व्यायाम का महत्त्व सभी विद्वान् पूर्ण रीति से स्वीकार करते हैं। देश में स्वास्थ्य-वर्द्धक व्यायामों का प्रचार करना अच्छी सरकार का आवश्यक कर्त्तव्य होता है। अतएव सभी देशों में राष्ट्रीय खेलों को प्रोत्साहित किया जाता है।

यह छोटी-सी पुस्तक व्यायाम-द्वारा पूर्ण शारीरिक विकास की इच्छा जागृत करने के लिए वैज्ञानिक दृष्टि से लिखी गई है। यदि जन-साधारण में, अपना स्वास्थ्य उत्तम बनाये रखने की भावना जागृत कर दी जाय, तो अवश्य ही इस दिशा में उन्नति करने की भूमिका तैयार की जा सकती है। इस पुण्य कार्य में उत्तम प्रेरक साहित्य अवश्य ही लाभजनक होगा। इसके बाद रहन-सहन के स्तर को ऊँचा करने का प्रश्न आता है तथा जनता के स्वास्थ्य को बढ़ाने वाली संगठित संस्थाओं को जन्म दिया जाना सम्भव है। स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातों की उपेक्षा-पूर्ण अवस्था को देखकर स्व० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा अपनी पुस्तक "स्वास्थ्य और रोग" में एक दोष-पूर्ण हलवाई की दूकान के चित्र के नीचे लिखते हैं—"............यह अवस्था लखनऊ—जैसे शहर की है, जहाँ हेल्थ-ऑफिसर तैयार किये जाते हैं।" हम आशा करते हैं कि यह पुस्तक लोगों का ध्यान, व्यायाम जैसी सर्वसुलभ बात की ओर आकर्षित करेगी।

बहुत-से लोग प्रति दिन प्रातःकाल सौन्दर्य-वृद्धि की कामना से दाढ़ी-मूँछों की सफाई बड़ी बेरहमी से करते हैं। फिर कंघा करने और शीशा देखने में उनका कुछ समय खर्च होता है। इस प्रकार करीब आध-पौन घन्टा सौन्दर्य-प्रसाधन में लग ही जाता है। ऐसे लोगों से, यदि सच्चे अचूक सौन्दर्य-वर्धक "व्यायाम" को अपनाने के लिए कहो तो "समय नहीं है" उत्तर देते हैं। असली बात यह है कि व्यायाम की अपेक्षा उनके हृदय में तेलों, क्रीमों, पाउडरों और दर्जी की कटिंग में अधिक विश्वास है। शृंगार-सामग्रियों के अखबारी विज्ञापकों ने सौन्दर्य-वर्धन के ये अत्यन्त सस्ते नुस्खे प्रचारित कर रखे हैं। देश के दुर्भाग्य से इन "अन्ध

विश्वासों" ने जड़ जमा ली है। अतः व्यायाम का स्थान लोगों की दिन-चर्या में नहीं है। इस बात को समझने की आवश्यकता है कि व्यायाम के लिए २० मिनट काफी हैं और २० मिनट का यह समय अवश्य ही सच्चे सौन्दर्य, बल, क्रान्ति और ओज को प्रदान करेगा।

मनुष्य-शरीर कोषों का समाज है।

स्रष्टा की इस विचित्र सृष्टि में, मनुष्य-शरीर सम्भवतः सब से अधिक आश्चर्यजनक है। इसकी कलात्मक और वैज्ञानिक रचना को देखकर महान कौतूहल होता है। मनुष्य-शरीर कला की दृष्टि से कितना सुन्दर है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। इसकी रचना को वैज्ञानिक इस-लिए कहा जाता है कि एक बुद्धिसंगत सुनिश्चित योजना के आधार पर इसका निर्माण हुआ है। वैज्ञानिक अनुसंधानों से मालूम होता है कि रीढ़ वाले सभी प्राणियों में ठीक दो सौ छः अस्थियाँ होती हैं, जिनका स्वरूप सभी प्राणियों में एक-समान है। गिबन जाति का वन्दर अभी तक अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है, गुरिल्ला ने पर्याप्त विकास किया है और मनुष्य ने निरन्तर विकास के द्वारा वर्तमान अवस्था पाई है। परन्तु रीढ़ वाले प्राणियों की शरीर-रचना जानने के लिए इनमें से किसी के भी शरीर की परीक्षा समान रूप से लाभदायक है; क्योंकि स्वरूप सबका एक ही योजना के आधार पर बना है।

व्यायाम और शारीरिक विकास के नियमों को जानने के लिए शरीर की मनोरंजक रचना और क्रिया-विधि को भली प्रकार समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। जिस प्रकार एक घड़ीसाज के लिए घड़ी की सूक्ष्म मशीनरी का प्रारंभिक ज्ञान आवश्यक है, उसी प्रकार व्यायाम-चर्या के विद्यार्थी के लिए शरीर का।

यदि शरीर का विश्लेषण किया जाय तो हमें उसका कार्य कई विभागों में बँटा हुआ मिलेगा। एक प्रकार के कार्य को करने वाले

अवयवों के समूह को 'संस्थान' (Systems) कहते हैं। हर एक संस्थान में अलग-अलग अवयव होते हैं और ये अवयव मिलकर उस संस्थान का कार्य पूरा करते हैं। जैसे---पाचक-संस्थान की लाला ग्रन्थियाँ आमाशय, पक्वाशय, क्षुद्रान्त्र और वृहदान्त्र आदि अवयव हैं। अवयव भी असंख्य छोटे-छोटे तन्तुओं ('Tissues') से मिलकर बनते हैं। इन तन्तुओं की रचना कोषों से होती है। ये अति सूक्ष्म कोष ही हमारे शरीर-रूपी मकान को बनाने वाली ईंटें हैं। इन अति सूक्ष्म कोषों की कार्य-विधि देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। ये कोष शिक्षित व समझदार नागरिकों की तरह अपने समाज के प्राप्त कर्तव्यों को ईमानदारी व योग्यता से करते हैं। इसलिए, शरीर को 'कोषों का समाज' नाम दिया गया है।

अगले प्रकरण में आप कोष, अवयव और संस्थानों का वर्णन कुछ विस्तार से पढ़ेंगे। इस प्रकार आपको सम्पूर्ण शरीर-रचना और उसकी कार्य-विधि ज्ञात हो सकेगी।

जीवन क्या है ?

जीवित शरीर के अध्ययन के सिलसिले में, जीवन क्या है, इस बात का उत्तर भी खोजना आवश्यक है। निम्न पाँच बातें ऐसी हैं, जो जीवित और निर्जीव के अन्तर को बताती हैं। ये विशेषताएँ सिर्फ जीवित पदार्थों में ही पाई जा सकती हैं---

१. गति (Movement) अर्थात् चलना-फिरना।

२. Anabolism--भोज्य पदार्थों को खाकर, हजम कर अपने शरीर का हिस्सा बना लेना।

३. वृद्धि (Growth) अर्थात् बढ़ते जाना।

४. सन्तान-उत्पादन (Reproduction) या नस्ल को आगे बढ़ाना।

५. Katabolism--शरीर में नष्ट हुए या विद्यमान व्यर्थ पदार्थों को बाहर निकाल देना।

इन पाचों बातों में सं० २ और ५ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। विचार करने से ज्ञात होगा कि जीवन, निर्माण और क्षय का समन्वय करने का प्रयत्न करता रहता है। इसीलिए, जीवन की कुछ क्रियाएं निरंतर 'बनाने' का कार्य करती हैं, शेष विनाश की परिचायक हैं। जीवन की इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को हम "प्राणापान-प्रक्रिया" के नाम से पुकार सकते हैं। अंग्रेजी में इसे मेटावोलिज्म (Matabolism) कहते हैं। यह भी स्पष्ट है कि मेटाबोलिज्म की पहली प्रक्रिया, जो निर्माणात्मक है, 'प्राण' है और बाद की विनाशात्मक क्रिया को 'अपान' कह सकते हैं। अंग्रेजी में इनके क्रमशः Anabolism और Katabolism नाम हैं।

बचपन में हम देखते हैं कि निरन्तर शरीर विकसित होता जाता है। इसका मतलब यह है कि बचपन में 'प्राण' (Anabolism) की क्रिया तेजी से होती है। वृद्धावस्था में अपान (Katabolism) की क्रिया तीव्र हो जाती है। इसलिए, यत्न करने पर भी शरीर क्षीण होता जाता है। युवावस्था में शरीर न बढ़ता है, न घटता है। अर्थात् दोनों काम समान शक्ति से होते हैं। वैज्ञानिकों ने परिक्षणों से स्थिर किया है कि इस समय शरीर से निकलने वाला मल, ग्रहण किये जाने वाले पदार्थों के भार के सर्वथा समान होता है।

अब हम इस बात को समझ सकते हैं कि जीवन की, प्राण और अपान दोनों क्रियाएँ अत्यन्त आवश्यक हैं। इनके सुचारू-रूप से होते रहने से शरीर स्वस्थ रह सकता है। अनुभव द्वारा मनुष्य इस निश्चित परिणाम पर पहुँचा है कि 'व्यायाम' एक ऐसा स्वास्थ्य-वर्धक साधन है, जिससे शरीर की प्राण-प्रक्रिया (भोजन हजम करना, भूख लगना, रक्त में ओषजन (Oxygen) मिलना आदि) और अपान-प्रक्रियाएँ (मल विसर्जन, रक्त के दूषित पदार्थ पसीने और प्रश्वास द्वारा बाहर निकलना, रक्त-सञ्चार-द्वारा शरीर के आन्तरिक दूषित पदार्थों की सफाई होना) बलवती होती हैं। इसलिये व्यायाम का उद्देश्य केवल मांस-पेशियों को संकोच और

विकास-द्वारा मोटा बना देना ही नहीं है, अपितु उसका मुख्य उद्देश्य यह है कि शरीर के सम्पूर्ण अवयव (जो प्राण और अपामन की प्रक्रिया में संलग्न है) उनके समन्वयात्मक विकास और पारस्परिक सहयोग द्वारा शरीर को पूर्ण स्वास्थ्य और विकास की अवस्था में पहुँचा दें। अतः शरीर के पूर्ण विकास के लिए सभी अंगों के व्यायाम आवश्यक बताये गये हैं।

जीवन के जितने लक्षण ऊपर गिनाये गये हैं, उनका आधार-भूत तत्त्व प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) है। इसे हम 'जीवन-सत्' नाम दे सकते हैं। शरीर-रूपी मकान की अति सूक्ष्म ईंटें (कोष) इसी प्रोटोप्लाज्म के द्वारा बनी हैं। अमीबा नामक एक कोष से बने सूक्ष्म प्राणी के शरीर का आकार इञ्च का १।२००० वाँ भाग होता है। प्रोटोप्लाज्म में प्रत्यामीन प्रोटीन (Protein) नामक तत्त्व अधिकता से पाया जाता है। प्रोटीनों में नत्रजन (Nitrogen) आवश्यक रूप से रहता है। प्रोटीन जीवित पदार्थों या जीवित-कोषों द्वारा प्रस्तुत पदार्थों में ही पाया जाता है। जड़ पदार्थों में प्रोटीन नहीं होता। अतः जीवन की एक बड़ी विशेषता प्रोटीन का ग्रहण करना या उत्पन्न करना है।

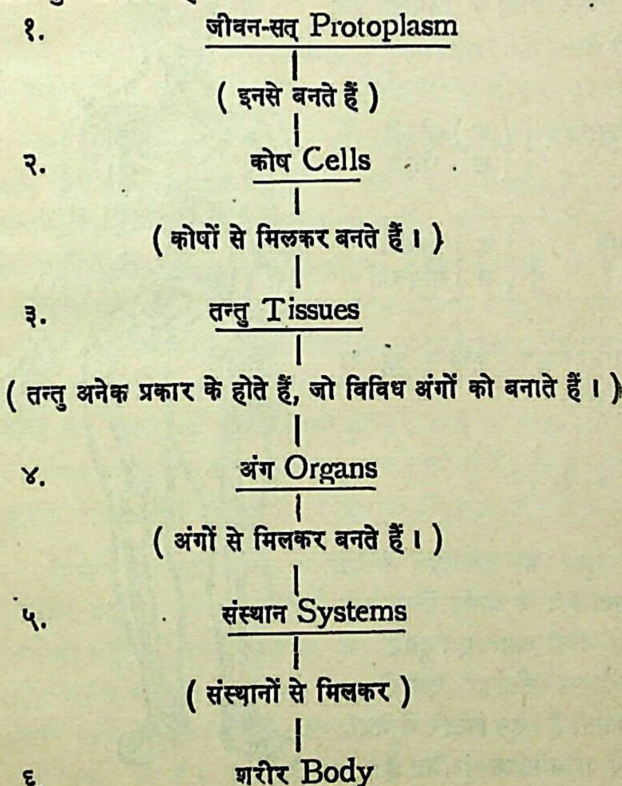
हम पहले कह चुके हैं कि कोषों से अवयवों का निर्माण हुआ है। कई अवयव मिलकर संस्थान (System) बनाते हैं। हमारे शरीर में निम्न संस्थान हैं—

१. अस्थि-संस्थान, २. मांस-पेशी-संस्थान, ३. श्वास-संस्थान, ४. रक्त-वाहक-संस्थान, ५. पाचक-संस्थान, ६. मल-विसर्जक-संस्थान, ७. उत्पादक संस्थान और ८. वात-संस्थान।

कोषों-द्वारा शरीर-निर्माण का काम आप एक उदाहरण के द्वारा समझ सकते हैं। रूई के रुओं से धागा बनता है। कोष रुओं के समान है, जो तन्तुओं (Tissues) को बनाते हैं। अनेक प्रकार के धागे विविध प्रकार का कपड़ा तैयार करते हैं, वैसे ही विविध प्रकार के तंतु, अंगों

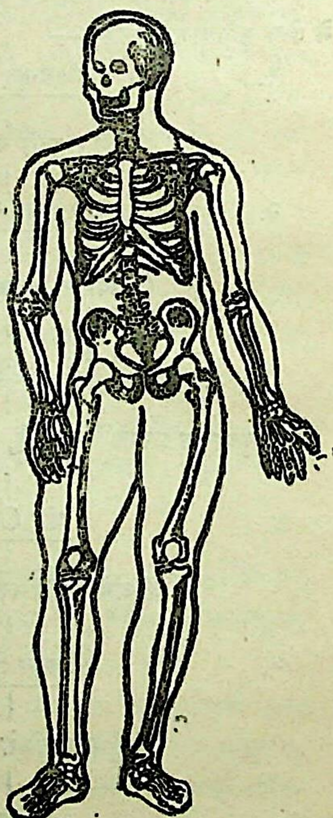
को बनाने के उपयुक्त उपादान (जिससे किसी वस्तु का निर्माण होता है), तैयार करते हैं। इन तन्तुओं के उपादानों से अनेक एवं विविध कार्य करने में समर्थ अंग बनते हैं। इन अंगों का जब किसी एक कार्य करने के लिये संगठन हो जाता है, उसे संस्थान (System) कहते हैं।

अब हम क्रमशः महत्त्वपूर्ण संस्थानों की रचना और उनके कार्य अति संक्षेप में देखेंगे; लेकिन, इस पाठ के कथन का सारांश निम्न कोष्ठक में देना सुविधाजनक रहेगा—



नर-कङ्काल या अस्थि-संस्थान

अस्थियाँ हमारे शरीर को सम्हाले हुए हैं। साथ ही, इनके द्वारा कोमल अंगों जैसे—मस्तिष्क व सुषुम्ना की रक्षा होती है। अंग सरलता से मुड़ सकें, इसलिए जोड़ बनाये गये हैं। जोड़ों की मजबूती के लिए उन्हें बाँधों० अस्थिबन्धन (Ligaments) से बाँध दिया गया है। शरीर में कई स्थानों पर नरम हड्डी का प्रयोग भी हुआ है। इसे उपास्थि (Cartilage) कहते हैं। इस नर-कङ्काल को हम ६ भागों में विभक्त कर सकते हैं—



१. उत्तमाङ्ग | (क) खोपड़ी
| (ख) चेहरा

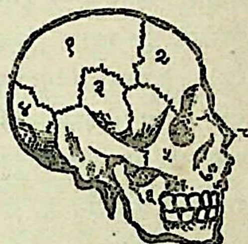
२. धड़ | (क) मेरुदण्ड
| (ख) पसलियाँ

३. वस्ति-गह्वर (कूल्हे व पुट्ठे की हड्डियाँ)

४. हाथ, पैर।

मनुष्य की खोपड़ी में ८ अस्थियाँ हैं। ये आपस में आरे के समान दाँतों को एक-दूसरे के किनारों में फँसाकर एक पिटारे को बनाती हैं। इस पिटारे में भेजा, दिमाग वा मस्तिष्क सुरक्षित है।

चौदह अस्थियां, जो विभिन्न आकार-प्रकार की हैं, मिलकर चेहरे का निर्माण करती हैं। इनमें ऊपर-नीचे की जवड़े की अस्थियाँ मुख्य हैं। इन्हीं में 'वत्तीसी भली प्रकार जड़ी गई है।

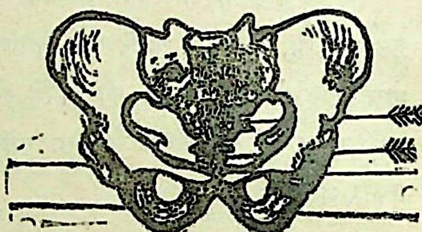


१. पार्श्वास्थि, २. ललाटास्थि, ३. शरवास्थि, ४. पश्चादस्थि, ५. कपोलास्थि, ६.अधोहन्वस्थि, ७.ऊर्ध्वहन्वस्थि और ८.नासास्थि।

उत्तमाङ्ग की तरह धड़ भी दो वड़ी कोठरियों में विभक्त है। ऊपर की कोठरी को वक्ष तथा नीचे वाली को पेट कहते हैं। इन दो कोठरियों के मध्य में मांस-पेशियों का बना एक पर्दा तना हुआ है, जिसे वक्ष उदर-मध्यस्थ-पेशी (Diaphragm) कहते हैं। यह पेशी वक्ष की कोठरी का फर्श तथा पेट की छत है। श्वास-प्रक्रिया में यह पेशी महत्त्वपूर्ण भाग लेती है। इसे आप श्वसन-संस्थान के प्रकरण में विशेष रूप से देखेंगे। इन दोनों कोठरियों के पीछे, धुरी के समान ऊपर से नीचे तक मेरुदण्ड स्थित है। इसके ऊपर खोपड़ी रखी हुई है। नीचे का सिरा नितम्वास्थि में फँसकर एक तसला-सा लगता है। इस तसले में पेट के कोमल अङ्ग आधार पाकर सुरक्षित रहते हैं। इसका नाम 'वस्ति-गह्वर' है।

मेरुदण्ड २४ छोटी-छोटी अस्थियों—जिन्हें कशेरुका कहते हैं—से मिलकर बना है। ये एक-दूसरे के ऊपर रखी हुई हैं, जिनके मध्य में माँस की गद्दी है, ताकि रगड़ न पैदा हो तथा मेरुदण्ड लचकीला वना रहे। प्रत्येक कशेरुका अस्थि का एक छोटा टुकड़ा है, जिसका धड़ आगे है, जिसके मध्य में छल्ला है और जिसके दायें-वायें और पीछे नोंक या सींग निकले हुए हैं। इन सींगों से पीठ की मांस-पेशियों को वांधा

गया है। कशेरुका एक-दूसरे के ऊपर इस प्रकार रखे हैं कि उनके छल्लों से मिलकर एक लम्बी खोखली नाली बनती है। इस नाली में सुषुम्ना नाड़ी सुरक्षित है, जो एक प्रकार से मस्तिष्क का ही बढ़ा हुआ भाग है। वस्ति गह्वर का पिछला भाग त्रिकास्थि और अनुत्रिकास्थि से मिलकर बना है। इन दोनों अस्थियों की गणना मेरुदण्ड में हैं। इन्हें मिलाकर कशेरुकाओं की संख्या २६ होती है। त्रिकास्थि और अनुत्रिकास्थि क्रमशः ५ और ४ कशेरुकाओं से जुड़कर बन गये हैं; क्योंकि ये कशेरुका परस्पर खूब मिल गये हैं; अतः इन्हें दो अस्थियों में गिना जाता है।



१. नितम्बास्थि-(जघनास्थि), २. त्रकास्थि, ३. अनुत्रिकास्थि, ४. वंक्षणोलूखल (उर्वस्थि के मुण्ड के लिए खात) ५. कुकुन्दरास्थि।

२४ कशेरुकाओं को स्थान की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त किया गया है—

१. ग्रैवेयक कशेरुका (गर्दन में लगे हुए)……….७		
२. पृष्ठ देशीय कशेरुका (पीठ में लगे हुए)……….१२	२४	
३. कटिदेशीय कशेरुका (कमर या पीछे लगे हुए)…५		

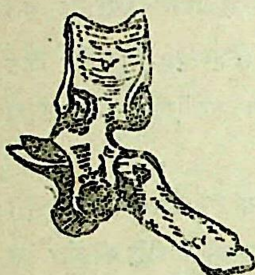
खोपड़ी की आधारभूत अस्थि में एक छोटा छिद्र है, जिसके दायें-बाएँ दो 'उभार' हैं। ये उभार मेरुदण्ड के सबसे ऊपर के कशेरुका (Atlas) के खातों में फिर बैठते हैं। ये दोनों खातें भी एटलस कशेरुका के छिद्र के दायें-बायें हैं। इस कारण सुषुम्ना सुरक्षित रूप से खोपड़ी से मेरुदण्ड के लम्बे छिद्र में प्रविष्ट होती है। इस रचना के कारण सिर आगे-पीछे गति कर सकता है।

सिर को दायें-बायें मोड़ने के लिए भी दूसरा प्रबन्ध किया गया है। ऐटलस के नीचे के कशेरुका—Axis—में एक खूँटी उभरी हुई है। जिस में ऐटलस का छल्ला आ जाता है। इसे धुरी मानकर ऐटलस-समेत खोपड़ी दायें-बायें घूम सकती है।

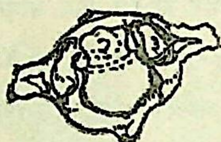
वक्षोगुहा की पीछली दीवार को पृष्ठ देशीय १२ कशेरुका बनाते हैं। पसलियों के बारह जोड़े हैं, जो इन बारह कशेरुकाओं के पीछे की ओर इस प्रकार सम्बन्धित हैं, जिससे पसलियाँ श्वास प्रश्वास के समय गति भी कर सकें। ऊपर के दस जोड़े आगे की लम्ब रूप वक्षोऽस्थि से उपास्थी (Cartilage) द्वारा सम्बन्धित हैं। पसलियों का अग्रिम भाग कार्टिलेज का होने के कारण ये अत्यन्त लचकदार हो जाती हैं, जो श्वास-प्रश्वास की क्रिया के लिए आवश्यक है। अन्तिम चार जोड़े वक्षोऽस्थि से सीधे सम्बन्धित नहीं हैं, अपितु १० वें का कार्टिलेज ९ वें से, तथा ९ वें का ८ वें से ८ वें का ७ वें से, ७ वें का ६ ठें के कार्टिलेज-द्वारा सम्बन्धित होकर वक्षोऽस्थि से जुड़ जाता है।

पसलियों की रचना से यह भी स्पष्ट है कि वे नीचे की ओर मामूली तरीके पर झुकी हुई हैं। फलतः श्वास लेते समय ये ऊपर उठकर छाती के आयतन को बढ़ा देती हैं और इसके विपरीत प्रश्वास काल में छाती को सिकोड़ देती हैं।

वर्णन करने के लिए हाथ को कई भागों में बाँटा गया है—भुजमूल (कन्धा), भुजा, अग्र बाहु, कलाई और हाथ। कन्धे के जोड़ के द्वारा बाहू से आबद्ध है। वक्षोऽस्थि के ऊपर के सिरे से टेढ़ी कंसास्थि का एक सिरा जुड़ा है, दूसरा सिरा भुजमूल में भुजा प्रगण्डास्थि (Humeius) के ऊपर के सिरे से लगा है।



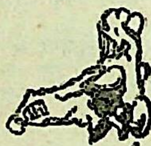
एक पृष्ठदेशीय कशेरुका
पार्श्व से
१. गात्र २. कशेरुकंटक
और ३. सलायक (गढ़ा)



प्रथम ग्रैवेयक कशेरुका
१. सुषुम्ना के लिए प्रणाली २. द्वितीय ग्रैवेयक ३. स्नात और ४. कशेरुका के गात्र (धुरी) के लिए खाली स्थान।

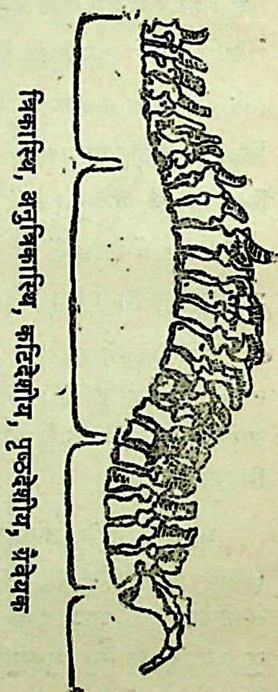


एक पृष्ठदेशीय कशेरुका
(ऊपर से)
१. सुषुम्नाके लिए प्रणाली
२. गात्र
३. Transverse Process
४. Spinous Process

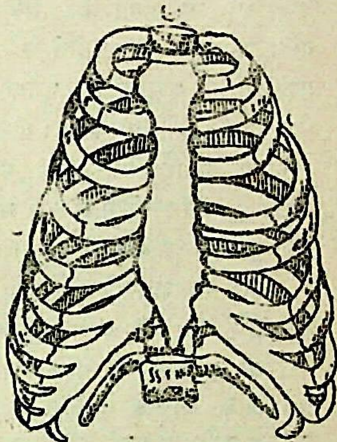


द्वितीय ग्रैवेयक कशेरुका
१. गात्र, जो प्रथम ग्रैवेयक कशेरुका में घुसकर धुरी बनता है।

मेरुदण्ड



Humerus की ऊपरकी मुष्टि-काकृति गाँठ 'अंस-फलक' (shoulder girdle) के ग्राहक खात में रखी जाती है। अंस-फलक एक त्रिकोणाकृति चपटी अस्थि है, जो पीठ के पीछे भुजमूल में दोनों ओर एक-एक रहती है। यह अंस-फलक मांस-पेशियों द्वारा पीठ में बाँधा गया है और कंसास्थि के सिरे से भी जुड़ा है।



वक्षगुहा (पसलियों का पिटारा)

१. वक्षोऽस्थि २, ६, ७, ८, ९ और १० वीं पसलियों की उपास्थि (Cartilage) और ३ पृष्ठ देशीय १२ वाँ कशेरुका।

प्रगण्डास्थि भुजा को बनाती है। उसका ऊपरी सिरा मुष्टिकाकृति का है जो अंस-फलक के खात में रखा जाता है। इस विशेष प्रकार के जोड़ के कारण, भुजा चारों ओर भली प्रकार गति कर सकती है।

अग्रबाहु में दो समानान्तर अस्थियाँ बहिः—प्रकोष्ठास्थि (Radius) और अन्तःप्रकोष्ठास्थि (Ulna) हैं। प्रगण्डास्थि (Radius) के नीचे बाहर की ओर अंतःप्रकोष्ठास्थि से लगा हुआ है, जिसके नीचे कलाई की अस्थियाँ सम्बन्धित हैं। बहिः—प्रकोष्ठास्थि प्रगण्डास्थि के नीचे के सिरे पर इस प्रकार सम्बन्धित है कि उससे किवाड़-जैसा एक ही ओर घूमने वाला जोड़ बनता है। कोहनी को छूने से एक नोक निकली हुई मालूम पड़ती है, जो बहिः-प्रकोष्ठास्थि का निकला हुआ वह भाग है, जिस पर स्थित होकर प्रगण्डास्थि का धुरी-जैसा भाग किवाड़-जैसा मोड़ बनता है। यदि हम अपने दाहिने हाथ को मेज पर चित याने हथेली को ऊपर करके रखें, तो बहिःप्रकोष्ठास्थि

बाहर की ओर होगी और जब हाथ को पट याने हथेली नीचे करें तो बहिः प्रकोष्ठास्थि अपने नीचे के सिरे में लगे हुए हाथ के साथ अन्तः-प्रकोष्ठाथि को घुरी बनाकर घूमेगी और हथेली पट हो जायगी।

हाथ की अस्थियाँ क्रमशः तीन श्रेणियों में व्यवस्थित हैं। प्रथम आठ अस्थियाँ कलाई की हैं। बाद में पाँच लम्बी अस्थियाँ हैं, जिनसे हथेली बनती है। इन पाँचों में से चार में उँगलियों की ३-३ पोरवे की अस्थियाँ लगी हैं और एक में अंगूठे की दो पोरवों की अस्थियाँ हैं।

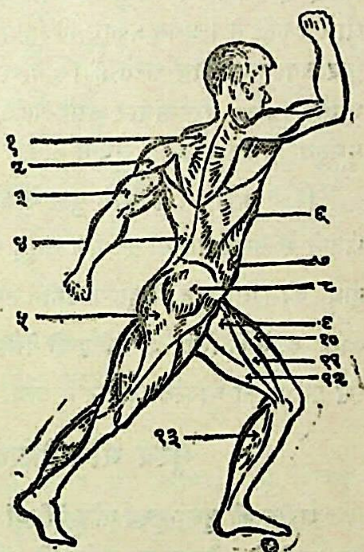
हाथ की अस्थियों की तरह ही पैर की अस्थियाँ भी उसी क्रम से लगी हैं। जाँघ की अस्थि, जिसका नाम उर्वस्थि है, अपने मुष्टिकाकृति सिर को कूल्हे की अस्थि के 'खात' (गड्ढे) में घुसेड़े हुए है। यह जोड़ भुजमूल के जोड़ के समान स्वतन्त्रता से चारों ओर घूमने वाला है। उर्वस्थि शरीर में सबसे अधिक मजबूत और बड़ी अस्थि है।

पिण्डलियों में अग्रबाहु की तरह की दो समानान्तर अस्थियाँ हैं। अन्दर की ओर अन्तर्जंघास्थि (Tibia) नामक अपेक्षाकृत दृढ़ अस्थि है। बाहर की अस्थि बहिर्जंघास्थि (Fibula) कहलाती है। अन्तर्जंघास्थि, अपने ऊपर के सिरे पर, उर्वस्थि के निचले सिरे के साथ, घुटने के किवाड़-जैसा एक ओर घूमने वाला जोड़ बनाती है। इस बड़े जोड़ की रक्षा के लिए तथा कुछ मांस-पेशियों से सम्बन्धित होने के लिए, हड्डी की एक टोपी-सी आगे की ओर लगाई गई है, जिसे हम अपने घुटने पर हाथ-द्वारा छूकर अनुभव कर सकते हैं।

टखने को बनाने वाले सात हड्डियों के छोटे २ टुकड़े प्रथम पंक्ति में हैं। इसके बाद पाँच लम्बी हड्डियाँ वे हैं, जो तलवे को बनाती हैं। इनके आगे उँगलियों की ३-३ पोरवे बनाने वाली छोटी २ हड्डियाँ हैं। अंगूठे में केवल दो हड्डियाँ हैं।

पैर की अस्थियों को इस प्रकार लगाया गया है कि वे पैर में एक महाराव-सा बनाती हैं। इस महाराव के कारण, कूदते या दौड़ते समय शरीर में झटका नहीं पहुँचता।

शरीर की मुख्य माँस-पेशियाँ—त्वचा को हटाने से लाल रंग का जो गूदा-सा दीखता है, वह माँस-पेशियों का आवरण है। शरीर में बहुत-सी मांस-पेशियाँ हैं। अधिकांश माँस-पेशियों के दोनों सिरे किन्हीं दो अस्थियों से जुड़े हैं। माँस-पेशियों के दो महान् गुण हैं—१ सिकुड़ जाना और २ पुनः पहले की अवस्था में आ जाना। इन दो संकोच और प्रसार (Muscular contraction) के गुणों-द्वारा ये पेशियाँ भारी-भारी कार्य करने में समर्थ होती हैं। जिन अस्थियों से कोई पेशी जुड़ी होती है, सिकुड़ने के द्वारा उन दोनों हड्डियों को यह पेशी पास ला देती है।



माँस-पेशियाँ

१. पृष्ठच्छदा, २. त्रिकोण, ३. त्रिशिरस्का, ४. कटिपार्श्वच्छदा ५. गुरुनितम्ब, ६. अग्रियांत्रिमा, ७. उदरच्छदाआदिमा, ८. मध्य-नितम्व, ९. जंघाकर्षिणी, १०. चतुर्शिरस्का प्रसारिका-और्वी पेशी, ११. दीर्घायामा, १२. पिण्डिका पेशी और १३. जंघापिण्डिका।

व्यायाम के द्वारा माँस-पेशियों को पुनःपुनः सिकोड़ा और ढीला किया जाता है, जिससे वे अधिक शक्तिशाली और स्थूल हो जाती हैं। इस लिए व्यायाम-द्वारा शरीर माँसल बनाया जा सकता है, जो देखने में सुन्दर लगता है। अतः व्यायाम से सौन्दर्य भी बढ़ जाता है।

माँस-पेशियों के दो विभाग किये जा सकते हैं—१—voluntary जो इच्छा शक्ति के अधीन है और २—Involuntary जो इच्छा के आधीन नहीं है। प्रथम प्रकार की ऐच्छिक माँस-पेशियों के द्वारा, हम अङ्ग-सञ्चालन आदि कार्य करते हैं। अनैच्छिक पेशियाँ आन्तरिक कार्य, जैसे—भोजन पचाना, रक्त-संचार आदि करती हैं। साँस का लेना और छोड़ना पूर्णतया इच्छा-शक्ति के अधीन नहीं है।

किसी कार्य को करने में कुछ पेशियाँ काम आती हैं। जैसे—हाथ को फैलाने के समय पेशियों का एक समूह काम करता है और इसके विपरीत हाथ को सिकोड़ने में दूसरा पेशी समूह। तो, इस प्रकार का विरोधी कार्य करने के लिए, दो प्रतिद्वन्दी पेशियों के समूह उपयोग में आते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था शरीर में प्रायः सर्वत्र है।

मुख्य माँस-पेशियों का काम

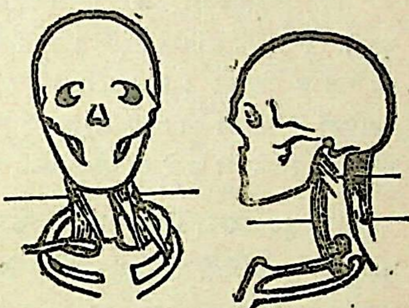
शरीर की मुख्य-मुख्य माँस-पेशियों को हम निम्न ५ भागों में विभक्त कर सकते हैं, और इनका वर्णन भी इसी क्रम से किया जायगा।

१. गर्दन की माँस-पेशियाँ, २. भुजा, भुजमूल और छाती की पेशियाँ, ३. पेट की माँस-पेशियाँ, ४. मेरुदण्ड की माँश-पेशियाँ और ५. पैरों की माँस-पेशियाँ।

१. गर्दन

(१) Longus Colli यह पेशी गर्दन के कशेरुकाओं के आगे लगी है। निचला सिरा तीसरे पृष्ठदेशीय कशेरुका से लगा है और ऊपर एटलस कशेरुका तक सभी से संलग्न है। सिर को पीछे जाने से यह रोकती है।

(२) Rectus Capitis Anticus ग्रैवेयक कशेरुकाओं से सम्बन्धित होकर खोपड़ी के आधार-भूत निचले भाग से सम्बन्धित है। यह ठुड्डी को मेरुदण्ड की ओर खींचे रहता है।



ग्रीवा की पेशियाँ (सामने और पार्श्व से)

1. Rectus Capitis Anticus, 2. Splenius cervicis- 3. Longus Colli, 4. Sterno--cleido mastoid, 5. Scaleni.

(३) Scaleni- ये पेशियाँ प्रथम दो पसलियों को ग्रैवेयक-कशेरुकाओं के दायें-बायें निकले हुए सींगों से बांधती हैं। इससे, श्वास लेते समय पसलियाँ ऊपर उठाई जाती हैं।

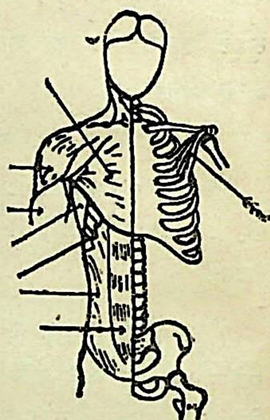
(४) Sterno-Cleido-Mastoid-इन पेशियों का निचला सिरा वक्षोऽस्थि के ऊपर के सिरे तथा कंसाऽस्थि के अन्दर के किनारे से जुड़ा है तथा दूसरा कान के पीछे। यदि सिर को दूसरी पेशियाँ स्थिर रखें तो ये पेशियाँ छाती को ऊपर उठाती हैं, अन्यथा सिर को सामने झुकाया जा सकता है।

२ भुजा, भुजमूल और छाती

(१) Rhomboid पीठ के पीछे Trapezius के नीचे अवस्थित है। यह अंस-फलक का भीतरी भाग पृष्ठदेशीय ऊपर के कशेरुओं से बांधता है। यह अंस-फलक को बाहर निकलने से रोकता है।

(२) उरश्छादनी लघ्वी (Pectoralis Minor), उरश्छादनी वृहती (Pectoralis Major) के नीचे स्थित है। यह अंसफलक की रीढ़ के किनारे (Coracoid Process) को ऊपर की तीन पसलियों से सामने की तरफ जोड़ता है। यह आवश्यकतानुसार छाती को ऊपर उठाने या कन्धे को नीचा करने का काम कर सकता है।

(३) पृष्ठच्छदा (Trapezius) पीठ की सुपरिचित पेशी है। यह खोपड़ी के पिछले नीचे के भाग, और ग्रैवेयक तथा पृष्ठदेशीय कशेरुकाओं के सीगों को, अंस-फलक की रीढ़ तथा कंसास्थि के वाह्य सिरे से बाँधती है। इस पेशी की आकृति त्रिकोण की है। अतः यह अंस-फलक को गर्दन की ओर ऊपर, पृष्ठदेशीय कशेरु-काओं की ओर खींचता है।



पीठ को पेशियाँ

१. पृष्ठच्छदा, २. अंसाच्छादनी, ३. कटिपार्श्वच्छदा, ४. External oblique, ५. मध्य नितम्ब, ६. गुरु नितम्ब और ७. अंसापकर्षणी।

(४) अग्रिमारिन्ना (Serratus Magnus)—ये पेशियाँ अंस-फलक के निचले पृष्ठ से, पसलियों के साथ-साथ करवट की ओर चलकर ऊपर की ९ पसलियों को आबद्ध करती हैं। इनसे अंसफलक वाहर की ओर खिंचा रहता है।

(५) अंसाच्छादनी (Deltoid)—त्रिकोणाकृति, भुजमूल के ऊपर रहने वाली प्रसिद्ध पेशी है। इसके ऊपर का सिरा अंसफलक की

रीढ़ और कंसाऽस्थि के बाहर वाले सिरे से आबद्ध है। इसका दूसरा सिरा प्रगण्डास्थि के मध्य में बाहर की ओर जुड़ा हुआ है। हाथ को कन्धे के बराबर सामने या पार्श्व में उठाने में यह पेशी मुख्य रूप से सहयोग देती है।

(६) कटिपार्श्वच्छदा (Latissimus Dorsi)–यह बड़ी पेशी है। इसका निचला भाग पृष्ठदेशीय, कटि देशीय और पूँछ की कशेरुकाओं तथा नितम्बास्थि के वाह्य किनारे से सम्बन्धित है। कुछ फाईबर्स निचली पसलियों से भी मिले हुए हैं। इसका ऊपरी सिरा प्रगण्डास्थि से अन्दर की ओर बंधा है। इस कारण, यह भुजा को नीचे की ओर पीछे की तरफ आकृष्ट करती है।



१. अंसफलक (स्कन्धास्थि), २. द्विशिरस्का,

भुजदण्ड की पेशियाँ

३. त्रिशिरस्का और ४. Bracoialis Anticus.

(७) उरश्छादिनी वृहती (Pecthralis Major)—यह पेशी छाती के ऊपर विस्तार से फैली हुई है। इसके आधारभूत किनारे अंसकास्थि के आन्तरिक भाग और सम्पूर्ण वक्षोऽस्थि से संलग्न हैं और सम्पूर्ण तन्तु एक कोन की ओर जाते हैं, जो दूसरे किनारे के रूप में प्रगण्डास्थि के ऊपर के भाग में आबद्ध होते हैं। यह पेशी, हाथ को छाती के ऊपर लाती है और ऊपर उठे हाथ को नीचे लाने में समर्थ भी। यदि हाथ ऊंपर उठाकर स्थिर रक्खा जाय, तो यह पेशी छाती को ऊपर खींचती है। (प्राणायाम का अ० सं० देखिये)।

(८) द्विशिरस्का पेशी (Biceps)– यह पेशी ऊपर दो जगह अंसफलक (Scapula) से संलग्न है और प्रगण्डास्थि के सामने लम्ब रूप से अवस्थित है। इसका नीचे का सिरा अग्रबाहु की बहिः प्रकोष्ठास्थि (Radius) से ऊपर के किनारे के पास लगा है। व्यायाम करने वालों की यह सुपरिचित-प्रसिद्ध पेशी है। यह हाथ को कोहनी से मोड़ती और

हाथ को पट (हथेली नीचे) तथा चित्त (हथेली ऊपर) कर सकती है।

(९) कूर्पर द्वारिका (Brachialis Anticus)–इस पेशी का ऊपर का सिरा प्रगण्डास्थि के निचले भाग से बँधा हुआ है और निचला सिरा अन्तः प्रकोष्ठास्थि (Ulna) के ऊपर के भाग से सामने की ओर संलग्न है। कोहनी को भुजा के ऊपर मोड़ने में यह सहायक है।

(१०) त्रिशिरष्का (Triceps)–यह ऊपर की ओर तीन जगह अस्थियों से जुड़ी हुई है। दूसरे शब्दों में प्रगण्डास्थि के पीछे दो जगह और आगे की ओर अंस-फलक से भुजमूल पर जुड़ी है। इसका नीचे का सिरा कोहनी की उस अस्थि से सम्बन्धित है, जो पीछे की ओर निकली रहती है। अंग्रेजी में इसका नाम (Olecranon) है।

३. पेट

(१)सरल उदरच्छदा (Rectus Abdomiuis)–यह आवरण रूप से पेट के ऊपर लगा है। ऊपर छाती के नीचे के भाग से तथा नीचे, वस्ति-गह्वर की नितम्बास्थि के सामने की किनारी से बँधा है। नग्न शरीर में पेट को देखने से इस पेशी के कई भाग प्रतीत होते हैं। इसका कारण है और वह यह कि लम्ब-रूप से एक कण्डरा (Tendon) इसको दायें और बायें दो भागों में विभक्त करती है। इसी प्रकार, समानान्तर तीन कण्डरायें भी इस पेशी में समानान्तर धारियाँ पैदा करती हैं। यह पेशी संकोच-द्वारा वस्तिगह्वर को वक्ष की ओर या वक्ष को नीचे की ओर खींचने में समर्थ है। ऐसा होने से, स्वभावतः पीठ गोल हो जाती है।

(२) वाह्य उदरच्छदा (External Oblique) और अन्तरुदरच्छदा (Internal Oblique) नाम को दो-दो पेशियाँ दोनों पार्श्वों में कोख के ऊपर आच्छादित हैं। प्रथम पेशी ऊपर वो नीचे की पसलियों के वाहर की ओर सम्बन्धित है और इसका दूसरा निचला सिरा नितम्बास्थि के सामने के ऊपर के किनारे से लगा है। दूसरी पेशी प्रत्येक पार्श्व की External Oblique पेशी के नीचे स्थित है जो ऊपर

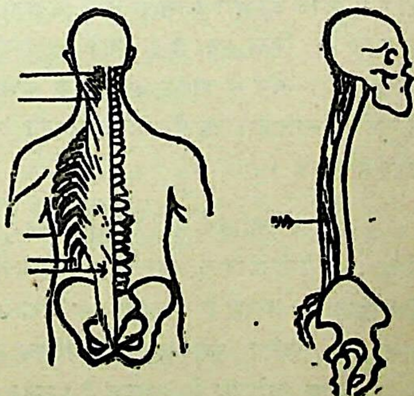
तो Rectus abdominis को लपेटने वाली एक कण्डरा से, तथा नीचे नितम्बास्थि से सम्बन्धित है। ये दोनों पेशियाँ शरीर को पार्श्व में सामने नीचे झुकाती हैं।

(३) Transversalis नामक पेशी ऊपर कही गई पेशियों के नीचे दायें से वायें स्थित है। यह पेशी उदर की दूसरी पेशियों के साथ संकोच करके आन्त्रादि अवयवों पर मालिश का प्रभाव पैदा करती है।

४. मेरुदण्ड

(१) Erector Spinae नामक पेशी मेरुदण्ड के समानान्तर पीठ में भीतर विद्यमान है और ऊपर खोपड़ी के आधार में संलग्न है। नीचे नितम्बास्थि (Pelvice) और त्रिकास्थि (Sacrum) से यह जुड़ी है। दायें-वायें क्रमशः मेरुदण्ड की कशेरुकाओं और पसलियों से इनके तन्तु जुड़े हैं। जब शरीर आगे मोड़ा जाता है, तो यह पेशी उसे आगे गिरने से रोकती है और संकोच-द्वारा पुनः पूर्व स्थिति में लाती है। मेरुदण्ड की सीधी खड़ी स्थिति को भी यही पेशी बनाये रखती है।

(२) संयुक्त मांस-पेशी Complexus नामक पेशी का ऊपर का सिरा खोपड़ी (Skull) के नीचे, पीछे की ओर लगा है। नीचे यह पेशी ऊपर की ग्रैवेयक कशेरुकाओं से जुड़ी है। अतः इसकी स्थिति गर्दन पर पीछे की ओर है। शरीर को आगे मोड़ते समय यह सिर को आगे गिरने से बचाती है। यह ठुड्डी को ऊपर भी उठाती है।



वक्ष और उदर की पेशियाँ

पहला चित्र—
१. Pectoralis Major
२. Deltoid
३. द्विशिरस्का बाहवीय पेशी
४. कटि पार्श्वच्छदा
५. Serratus Magnus
६. External oblique
७. सरल उदरच्छदा पेशी
८. Pectoralis Minor

दूसरा चित्र—
१. Comhlexus
२. पृष्ठवंशीया
३. पर्शुकान्तरिका पेशियां
४. तिर्यक् उदर पेशियाँ
५. मेरुदण्डोत्थापिका पेशी
६. Erector Spinae

५. पैर

(१) गुरुनितम्ब (Cluteus Maximus)—यह नितम्ब पर पीछे और नीचे की गुदगुदी पेशी है। ऊपर यह नितम्बास्थि तथा त्रिकास्थि (Sacrum) से आवद्ध है। नीचे ऊर्वस्थि के (Shaft) के पीछे बंधी है और पैर को पीछे ले जाती है।

(२) मध्यनितम्ब (Cluteus Medius)–जाँघ में पार्श्व की ओर कोंख से नीचे नितम्बास्थि से ऊपर का सिरा लगा है। इसके तन्तु नीचे की ओर एक नोक में जाकर उर्वस्थि के मध्य में संलग्न हो जाते हैं। यह पैर को बाहर की ओर उठा सकती है।



पैर

१. Iliopsoas
२. Adductors

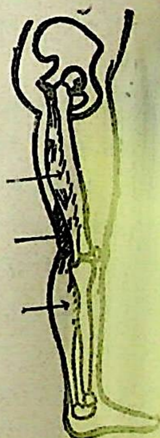
(३) कटिलम्बिनी (Ilio Psoas)—वस्तुतः यह पेशी ऊपर की ओर दो जगह तथा नीचे एक स्थान पर आबद्ध है। इसका एक सिरा ऊपर वाली कटि प्रदेशीय कशेरुका तथा अन्तिम नीचे के पृष्ठदेशीय कशेरुका से आवद्ध है। ऊपर का द्वितीय सिरा नितम्बास्थि के बाहर और पीछे

वाले किनारे से संलग्न है । इन दोनों ऊपर वाले किनारों से तन्तु नीचे की ओर एक दिशा में जाकर ऊर्वस्थि की गर्दन के नीचे Lesser Trachanter से जाकर जुड़ जाते हैं । यह पेशी क्रमशः धड़ को जाघों पर या जाघों को धड़ पर मोड़ सकती है ।

(४) जंघाकर्षणी (Adductors of the thigh)—जांघों को भीतर की ओर स्थूलता देने वाली पेशियाँ हैं । ये नितम्बास्थि के निचले किनारे को ऊर्वस्थि Femur के आन्तरिक किनारे से जोड़ती और जाँघ को अन्दर की ओर खींचती हैं ।

of the thigh
३. मध्य नितम्ब
४. लघु नितम्ब
५. चतुः शिरस्का प्रसारिणी पेशी
६. Quadriceps Extensor
७. ,,

(५) चतु:शिरस्का प्रसारिका और्वी (Quadiceps Extensor Femaris)–जंघों के सामने विद्यमान् ४ शिराओं वाली प्रसिद्ध पेशी है । यह ऊपर की ओर नितम्बास्थि के सामने निचले किनारे तथा ऊर्वस्थि के सामने व दायें-बायें पार्श्वों से जुड़ी है । नीचे की ओर जाती हुई यह पेशी कण्डरा (Tendon) का रूप धारण कर जान्वस्थि (Patella) को ढकती हुई अन्तर्जंघास्थि (Tibia) से सामने की ओर जुड़ जाती है । यह, पिण्डलियों को लम्बा कर पैर को सीधा करती है तथा Ilio-Psoas के कार्य में भी सहायता करती है, क्योंकि नितम्बास्थि से भी सम्बद्ध है ।



पैर की पेशियाँ

१. Hamstrings. २. Hamsrtings और ३. पिण्डिका-पेशी ।

(६) पिण्डिका (Hamstring Muscles)- जंघे के पीछे ऊर्वस्थि के समानान्तर स्थित है और ऊपर नितम्बास्थि से जुड़ी है । इसका नीचे

का सिरा पिण्डलियों (Sawer leg) में जाकर दो तरफ जुड़ा है। यह पेशी पैर को जाँघ पर मोड़ती और पैर घुटने से पैर ऊपर अधिक मुड़ने से रोकती है।

माँस-पेशियों में रासायनिक परिवर्तन

हम यह बता चुके हैं कि मांस-पेशियों में, संकोच व प्रसार के रूप में, भौतिक परिवर्तन Physical changes होने का महान् गुण विद्यमान् है। इसके अतिरिक्त उसमें रासायनिक परिवर्तन भी होते हैं। जब पेशियाँ कार्य करती हैं, तब इन रासायनिक परिवर्तनों की क्रिया तीव्र हो जाती है। यही कारण है कि व्यायाम के समय रक्तसञ्चार, श्वास-प्रश्वास और पसीने का निकलना बढ़ जाता है। ये सब वस्तुतः रासायनिक क्रियायें हैं, जो विश्रामावस्था में भी होती रहती हैं; क्योंकि शरीर के अन्दर पाचन, रक्ताभि-सरण आदि क्रियायें; अनैच्छिक पेशियों के द्वारा सदा होती रहती हैं।

रासायनिक क्रियाओं की आवश्यकता क्यों है; इसे समझना भी आवश्यक है। वैज्ञानिकों का यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि कोई पदार्थ नष्ट नहीं होता अपितु वह, केवल रूप परिवर्तित कर लेता है। इसी सिद्धान्त के आधार पर, यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि विविध शक्तियाँ आपस में परिवर्तित की जा सकती हैं। जैसे—ताप एक शक्ति है, जिसे गति में परिवर्तित किया जाता है। इन्जिन में वाष्प की उष्णता को बदल कर गति में लाया जाता है। इसी प्रकार विद्युत को प्रकाश में बदल कर लैम्प का रूप दिया गया है। पेट्रोल के परमाणुओं की रासायनिक शक्ति को गति में परिवर्तित कर हम मोटर में बैठकर लम्बी-लम्बी यात्रायें करते हैं। इन्जिन और मोटर की तरह, शरीर भी, एक शक्ति को दूसरी शक्ति के रूप में परिवर्तित करने की मशीन ही है। माँस-पेशियों को विविध कार्य करने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है। यह शक्ति भोज्य पदार्थों के परमाणुओं की रासायनिक शक्ति को काम में

लाने से मिलती है। शरीर का भी इञ्जन की तरह यही कार्य है कि वह क्रिया रासायनिक द्वारा शक्ति प्राप्त करता रहे अतः शरीर में रासायनिक क्रियाएँ निरन्तर होती रहती हैं। आज तक निर्मित सभी मशीनों में शरीर की मशीन ही सर्वश्रेष्ठ कही जा सकती है। साधारणतया मनुष्यकृत इञ्जिनों में ४ से १२ प्रतिशत उत्पन्न उष्णता को ही काम में लाया जा सका है, जब कि शरीर में उत्पन्न ताप का २८ प्रतिशत भाग कार्य में लाया जाता है।

संकोच और प्रसार के लिए शक्ति की आवश्यकता है। यह शक्ति खाद्य-पदार्थों (जैसे शर्करा) द्वारा प्राप्त होती है। रक्त इस शर्करा को पेशी तक पहुँचाता है तथा ओषजन (oxygen) भी रक्त द्वारा ही प्राप्त होती है। शर्करा का ओषजन के मेल से ज्वलन होता है। जिससे ताप और शक्ति पैदा होकर गति आदि कार्य सम्पन्न होते हैं। ज्वलन के समय कार्बोनिक-एसिड नामक दूषित गस भी पैदा होती है, जो रक्त-द्वारा लौटाकर फुफ्फुसों द्वारा बाहर कर दी जाती है। पेशी की टूट-फूट से एक सारको-लैक्टिक-एसिड (Sarco-Lactic-Acid) पैदा होता है। कार्य करने पर जो थकान अनुभव होती है, उसका कारण यही एसिड है। इस प्रकार निम्नलिखित रासायनिक परिवर्तन होते हैं—

१. संकोच और प्रसार।

२. शर्करा और ओषजन का मेल अर्थात् ज्वलन।

३. कार्बोनिकएसिड और सारकों लैक्टिक एसिड की उत्पत्ति।

४. ताप और शक्ति की उत्पत्ति।

५. थकान की अनुभूति।

रक्त

(१) जीवित शरीर का सर्वस्व रक्त है और रक्त की शक्ति का स्रोत ओषजन है।

(२) रक्त नाड़ियों में बहने वाला द्रव है, जो शरीर के प्रत्येक छोटे कोष और सूक्ष्म तन्तु को खाद्य व ओषजन पहुँचाता है।

(३) ओषजन का कोषों और तन्तुओं के कार्बोज (वसा शर्करा-और स्टार्च) से मेल होता है, जिसे ज्वलन कहते हैं। ज्वलन के परिणाम-स्वरूप दूषित गेस यथा-कारबोनिक एसिड गैस पैदा होती है। रक्त, इन्हें बाहर निकालने के लिए लादकर फेफड़ों तक ले जाता है। अन्य अनुप-योगी पदार्थों को भी, जो कोषों तथा तन्तुओं के काम के नहीं रहते, बाहर निकालने वाले अङ्गों Excretory Organs तक पहुँचाने वाला रक्त ही है।

सारांश यह कि रक्त के दो प्रधान काम हैं। १–पोषण और २–सफाई करना।

रक्त कैसा है ?

सूक्ष्म-दर्शक यंत्र से देखने पर रक्त में तीन वस्तुएँ ज्ञात होती हैं—१ रक्त द्रव (Plasma) २ लालकण (Red Blood-Carpu-seles) और ३ श्वेत कण (White Blood-Carpuseles)

(१) रक्त द्रव—यह अल्ब्यूमिनस द्रव है, जिसमें खनिज भी मिले रहते हैं और दोनों प्रकार के कण तैरते रहते हैं।

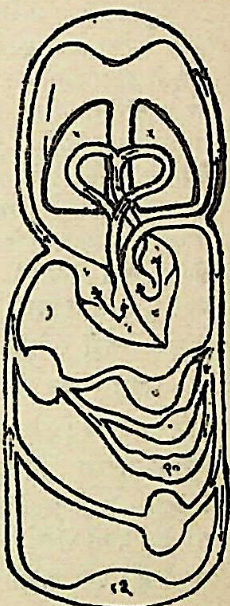
(२) लालकण (R. B. C.)—छोटी-छोटी चपटी प्लेटों की तरह हैं। एक सूक्ष्म आवरण के अन्दर द्रव भरा रहता है। इस द्रव में हिमोग्लोबीन नामक पदार्थ रहता है, जो ओषजन के साथ मिलकर एक समास Compound बनाता है। इस प्रकार लालकण ओषजन को ग्रहण करने में समर्थ होते हैं तथा सम्पूर्ण शरीर में ओषजन पहुँचाते हैं।

(३) श्वेत कण (W. B. C.)—ये जीवित कोषों के स्वभाव वाले, श्वेतरङ्ग के कण हैं। इनका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण गुण यह है कि ये विजातीय पदार्थों को—जैसे रोग-कीटाणु के रक्त में आने पर उसे घेर हजम कर डालते हैं।

शरीर में रक्त कैसे दौड़ता है ?

रक्त-सञ्चार का कर्ता हृदय है। यह शक्तिशाली पम्प जन्म से लेकर

मृत्यु-पर्यन्त सोते-जागते रक्त को शरीर के प्रत्येक छोटे-बड़े भाग में पहुंचाता रहता है। यह छाती के अन्दर कुछ बाँई ओर स्थित है। इसके चार भाग हैं। १—दक्षिण ग्राहक कोष्ठ Right Auricle २—दक्षिण क्षेपक कोष्ठ Right ventricle ३—वाम ग्राहक कोष्ठ Left Auricle और ४—वाम क्षेपक कोष्ठ Left Ventricle। दक्षिण ग्राहक कोष्ठ का दक्षिण क्षेपक कोष्ठ के साथ और बाम ग्राहक कोष्ठ का वाम क्षेपक-कोष्ठ के साथ सीधा सम्बन्ध है। दोनों ओर के ग्राहक कोष्ठों और क्षेपक कोष्ठों के मध्य में मांस के ऐसे कपाट लगे हैं, जो एक ही ओर खुल सकते हैं। अर्थात् इन कपाटों की रचना-विशेष के कारण रक्त क्षेपक कोष्ठ में से दिखानेवाला रेखा-चित्र ग्राहक कोष्ठ में नहीं लौट सकता।



रक्ताभिसरणको

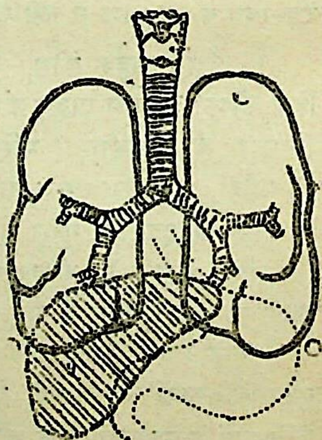
१. दक्षिण ग्राहक कोष्ठ, २. दक्षिण क्षेपक दिखाने वाला रेखा-चित्र कोष्ठ, ३. वाम ग्राहक कोष्ठ, ४. वाम क्षेपक कोष्ठ, ५. फुफ्फुस (फेफड़ा), ६. उत्तमांग (मस्तिष्कादि), ७. आमाशय, ८. यकृत, ९. प्लीहा, १०. क्षुद्रान्त्र-वृहदन्त्र, ११. वृक्क, १२. पैर।

रक्त को हृदय से शरीर के अंगो तक ले जाने के लिए धमनियाँ (Arteries) होती हैं, जो दृढ़ और लचकीली हैं। इसी प्रकार रक्त को इकट्ठा कर पुनः हृदय में ले जाने वाली नाड़ियों को शिरायें कहते हैं।

धमनियों और शिराओं को मिलाने वाला एक अति विस्तृत और सूक्ष्म 'केशिकाओं' का जाल है, जो प्रत्येक तन्तु और कोष में व्याप्त है। केशिकाओं के सूक्ष्म पर्दों में से छन कर ओषजन और पोषण-द्रव कोषों को प्राप्त होते हैं।

हृदय का वाम क्षेपक कोष्ठ धमनियों में शुद्ध चमकीले लाल रंग का रक्त भेजता है। इस रक्त में ओषजन अधिकता के साथ रहती है। तन्तुओं द्वारा इस रक्त की ओषजन ग्रहण कर ली जाती है; उसके स्थान पर कार्बोनिक एसिड नाम की विषाक्त दूषित गैस रक्त में मिल जाती है, जो कार्बन के ओषजन के साथ मिलने अर्थात् जलने से पैदा होती है। इस गैस की उपस्थिति के कारण शिराओं में बहने वाले रक्त का रंग कुछ नीला हो जाता है। यह दूषित नीले रंग का रक्त हृदय के दक्षिण ग्राहक कोष्ठ में, फिर यहाँ से दक्षिण क्षेपक कोष्ठ में जाता है। हृदय का दक्षिण क्षेपक कोष्ठ रक्त को शुद्ध होने के लिए (कार्बोनिक एसिड छोड़कर प्रश्वास द्वारा बाहर निकालने तथा श्वास की वायु से ओषजन लेने के लिए) फेफड़ों में भेजता है।

फेफड़े स्पञ्ज के सदृश अनन्त वायुकोषों वाले दो थैले हैं। मुख के पीछे ग्रसनिका (Pharynx) से शुरू होने वाली एक श्वास-प्रणाली हैं, जिसके प्रारम्भ में टेंटुआ स्वर-यंत्र Vice Box लगा हुआ है। इसी में शब्द की उत्पत्ति होती है। यह श्वास-प्रणाली वक्ष के नीचे सीधी उतर गई है। दोनों फेफड़ों में प्रविष्ट होने के ठीक पहले इसकी दो शाखायें हो जाती हैं। एक शाखा दक्षिण फुफ्फुस तथा दूसरी वाम फुफ्फुस में जाती है वहाँ जाकर यह अनन्त शाखा-परशाखाओं में विभक्त होकर अन्त में अति सूक्ष्म वायु की थैलियों में समाप्त हो जाती है। फेफड़े इन्हीं वायु-कोषों के समूह मात्र हैं। इन थैलियों का पर्दा बहुत बारीक है, जिसमें से छनकर वायु की ओषजन इसी पर्दे पर बिछे सूक्ष्मरक्त-केशिकाओं में बहने वाले रक्त में मिलती है। और क्योंकि यह रक्त शरीर में से दूषित कार्बोनिक एसिड गैस को इकट्ठा करके लाया है, अतः इसकी कार्बोनिक एसिड और जल-वाष्प छनकर वायु



श्वास-प्रणाली और फुफ्फुस

में मिल जाते हैं। यह वायु प्रश्वासरूप में श्वास-प्रणाली में होती हुई नाक के द्वार से बाहर निकल जाती है।

इस प्रकार रक्त दक्षिण क्षेपक कोष्ठ से फुफ्फुसीय धमनियों द्वारा फेफड़ों में लाया जाता है। यह पर

द. फ. दक्षिण फेफड़ा। व. फु. वाम फुफ्फुस। १. दक्षिण फेफड़े में जाने वाली श्वास-नली। २. वाम फेफड़े में जाने वाली श्वासनली। ३. श्वासप्रणाली। ४. आमाशय। ५. यकृत।

यह दूषित रक्त वायुकोषों के पर्दे पर फैले हुए सूक्ष्म के शिकाओं के जाल में रासायनिक परिवर्तन द्वारा शुद्ध होने के लिए बहता है। शुद्ध हुआ रक्त के शिकाओं के मिलने से बनी उत्तरोत्तर स्थूल होती हुई फुफ्फुसीय शिरा के द्वारा वाम ग्राहक कोष्ठ में पहुँचता है और वहाँ से वाम क्षेपक कोष्ठ में। यहाँ से रक्त धमनियों द्वारा शरीर के प्रत्येक कोष व तन्तु में व्याप्त केशिकाओं के जाल में गुजर कर पोषण देता है। केशिका की सूक्ष्म नलिकायें मिल-मिलकर शिराओं को बनाती हैं। अन्त में एक सिरा में सम्पूर्ण रक्त सञ्चित होकर हृदय के दक्षिण ग्राहक कोष्ठ में पहुँचता है। यहाँ से पूर्व वर्णित चक्र पुनः प्रारम्भ होता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि रक्त-सञ्चार का संस्थान दो विभागों में विभक्त है। एक फुफ्फुसीय रक्ताभिसरण-संस्थान और दूसरा शारीरिक रक्ताभिसरण-संस्थान।

इस अध्याय के प्रारम्भ में हमने रक्त के जो महत्त्वपूर्ण कार्य बताये हैं, वे इस विवरण के पढ़ने के बाद भली प्रकार समझे जा सकते हैं।

श्वास-कर्म

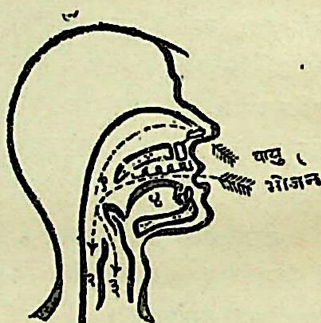
रक्त-सञ्चार के प्रकरण में "श्वास-प्रश्वास संस्थान" के अवयवों का वर्णन आ चुका है। तदनुसार निम्न अङ्ग काम में आते हैं।

(१) नासिका के रन्ध्र—इन रन्ध्रों की रचना विशेष रूप से श्वास लेने और छोड़ने के लिए की गई है। नाक से सांस लेने के दो प्रधान

लाभ हैं। (१) नाक में स्थित बालों के कारण श्वास व वायु छन जाती है और नासिका के अन्दर क्षरित होने वाले द्रव से वायु आर्द्र हो जाती है, (२) नासिका में जाने के कारण वायु शरीर के तापमान के समान तापमान वाली होकर फेफड़ों में जाती है। फलतः ठण्डी या गरम धूलि-कण वाली दूषित वायु एक साथ फेफड़ों में नहीं पहुँच सकती। यहाँ यह कह देना प्रासङ्गिक है कि मुख से श्वास लेना उपर्युक्त कारणों से सर्वथा त्याज्य है। सोते-जागते या व्यायाम करते समय कभी भी श्वास मुख से नहीं लेना चाहिए।

(२) "श्वास-वायु" नासिका के बाद मुख के पीछे ग्रसनिका (pharynx) में पहुँचती है।

(३) टेंटुआ (स्वर-यंत्र)—इसके द्वार पर मांस की एक कपाटी लगी है, जो भोजन निगलते समय इसे बन्द कर देती है; जिससे अन्न या जल श्वास-प्रणाली में नहीं जा सकता। यदि कभी गलती से कोई कण जाने लगता है, तो वेगपूर्वक खाँसी उठती है, जिससे वह कण लौट आता है।



ग्रसनिका

१. ग्रसनिका, २. अन्न-प्रणाली, ३. श्वास-प्रणाली, और ४. जिह्वा,

(४) श्वास प्रणाली—यह दो भागों में विभक्त होकर क्रमशः दायें-बायें फेफड़ों में वायु पहुँचाती है।

(५) फुफ्फुस—स्पञ्ज के समान वायुकोष युक्त थैले हैं।

साँस कैसे लेते और छोड़ते हैं ?

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वक्षगुहा का निचला तल मांस की

वक्षोदर मध्यस्थ पेशी से बना है। यह मध्य में छाती के भीतर ऊपर की ओर तनी हुई है। जब इसकी तन्तुयें संकुचित होती हैं तो यह उन्नतोदर न रहकर चपटी होने लगती है। इससे पेट पर दबाव पड़ता है, और वह आगे निकल जाता है। छाती का आयतन वक्षोदर मध्यस्थ पेशी के नीचे हो जाने से बढ़ जाता है।

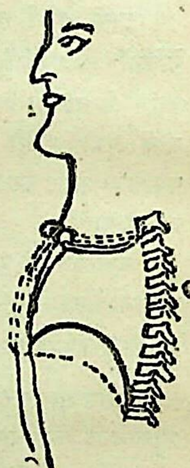
इसके अतिरिक्त पसलियों में 'पर्शुकान्तरवर्तिनी (Intercastal) पेशियाँ' लगी हुई हैं, जो प्रत्येक नीचे की पसली को अपने से ऊपर वाली पसली से बाँधती हैं। पेशियों की रचना से स्पष्ट है कि वे सामने की ओर नीचे झुकी रहती हैं। पर्शुकान्तरवर्तिनी पेशियों के संकुचित होने से पसलियाँ ऊपर उठती हैं। इस प्रकार वक्षगुहा का आयतन सामने से भी बढ़ जाता है।

वक्ष का इस प्रकार आयतन बढ़ने से रिक्त स्थान को घेरने के लिए वायु नासिका में से दौड़ती है, और लचकीले फेफड़ों के वायुकोषों को पूर्ण करती है। सामान्य परिस्थिति में श्वास इसी प्रकार लिया जाता है।

प्राणायाम करते समय वायु को अधिक-से-अधिक मात्रा में फुप्फुसों में पहुँचाने के लिए बलपूर्वक वक्षगुहा का आयतन बढ़ाया जाता है। पसलियों को आगे ऊपर की ओर और अधिक उठाने के लिए मेरुदण्ड से ऊपर को ओर सम्बद्ध पेशियाँ—जैसे Scaleṇi और Sterno cleido-mastoid- काम आती हैं। इसके अतिरिक्त पसलियों को कन्धे से जोड़नेवाली Pectoralis minor भी महत्त्वपूर्ण कार्य करती हैं। इन पेशियों की सहायता से पसलियाँ ऊपर उठ जाती हैं और वक्ष का आयतन बहुत बढ़ जाता है; जिसमें अधिक वायु समा जाती है। फलतः रक्त को अधिक ताजी वायु के सम्पर्क में आने का अवसर मिलता है। साथ ही फेफड़ों के वे वायु-कोष, जो सामान्य अवस्था में श्वास लेने पर ताजी वायु से पूरित नहीं हो पाते, ताजी वायु से भरकर रक्त को शुद्ध बनाने लगते हैं। इस प्रकार प्राणायाम करने से फेफड़े बलवान् भी होते हैं।

अब यह देखना है कि फेफड़ों में से वायु क्योंकर निकलती है ? कहा जा चुका है कि फुफ्फुस लचकीले अर्थात् 'स्थितिस्थापक' (Elastic) होते हैं। वक्षगुहा के आयतन को बढ़ाने वाली पेशियाँ जब संकुचित होना बन्द कर देती हैं तो ये फुफ्फुस भी पूर्वा अवस्था में आने लगते हैं। पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति और पसलियों के अग्रिम सिरों पर लगी उपास्थि (Cartilage) भी फेफड़ों को पूर्वावस्था प्राप्त करने में सहायता देती है।

प्राणायाम में श्वास को बलपूर्वक बाहर भी निकाला जाता है। ऐसा करने के लिए पेट के ऊपर आवरण रूप स्थित पेशियाँ-जैसे– Rectus Abdominis--पसलियों को, वक्षगुहा संकुचित करने के लिए, नीचे खींचते हैं तथा आँतों पर दबाव पड़ता है; जो कि वक्षोदर मध्यस्थ पेशी को ऊपर उठाकर उन्नतोदर अवस्था में ला देता है। इस प्रकार अन्तिम परिणाम यह होता है कि वक्षगुहा नीचे और पार्श्वों से संकुचित होकर फेफड़ों की वायु को बाहर निकाल देती है।



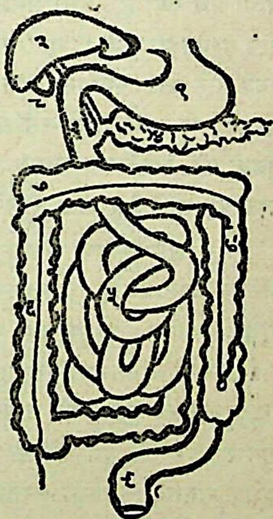
श्वास लेने पर वक्ष और वक्षोदर मध्यस्थ पेशी की अवस्था

बिन्दुओं वाली रेखा के द्वारा यह दिखाया गया है कि कुम्भक करने पर वक्षोऽस्थि आगे और ऊपर उठ जाती है और वक्षोदर मध्यस्थ पेशी नीचे झुक जाती है।

पाचक संस्थान और उनका कार्य

पाचक संस्थान में बहुत से अवयव शामिल हैं। इनका उद्देश्य भोजन को मथकर रासायनिक क्रिया द्वारा ऐसे द्रव में परिणत कर देना है कि जिससे वह शोषित होकर रक्त में मिल जाय। रक्त इस पोषक तत्त्व को प्रत्येक कोष के पास पहुँचा देता है।

हमारे शरीर में भोजन ग्रहण करने की ३० फिट लम्बी एक नली है, जो मुख से शुरू होकर गुदा-द्वार (Anus) पर समाप्त होती है। वैज्ञानिक भाषा में इसका नाम महास्रोतस् (Alimentary Canal) है। इस महास्रोतस् के कई भाग हैं। आदि में मुख, मुख के नीचे गले का पिछला भाग 'ग्रसनिका' (Pharynx) है। ग्रसनिका के आगे से श्वास-प्रणाली (Wind Pipe) प्रारम्भ होती है, जिसके ऊपर टेंटुआ (Larynx) स्थित है। श्वास-प्रणाली के पीछे अन्न-प्रणाली (Gullet or Oeso-Phagus) वक्षगुहा से वक्षोदरमध्यस्थ पेशो को भेदती हुई नीचे आमाशय (Stomach) से मिल जाती है। आमाशय एक मांस-पेशियों का थैला है, जो उदरगुहा में वक्षोदर मध्यस्थ पेशी के नीचे दायें-बायें स्थित है। आमाशय का दूसरा निचला द्वार क्षुद्रान्त्र (Small Intestine) से सम्बन्धित है। क्षुद्रान्त्र की लम्बाई २२॥ फिट है। क्षुद्रान्त्र का प्रारम्भिक भाग पक्वाशय (Duodenum) कहलाता है। अन्त में जाकर यह प्रणाली अधिक चौड़ी हो जाती है, जिसे वृहदन्त्र (Large intestine-or Rectum) कहते हैं। इसकी लम्बाई ५ फिट है। वृहदन्त्र उदर में अपनी स्थिति के कारण ३ भागों--- आरोही (Ascending Colon), अवरोही (Descending Colon) और अनुप्रस्थ (Transvers Colon मे विभक्त है। इसका अन्तिम भाग मलाशय कहा जाता है।



पाचक-प्रणाली

१. आमाशय। २. यकृत। ३. पक्वाशय। ४. अग्न्याशय या क्लोमग्रन्थि। ५. क्षुद्रान्त्र या छोटी आँत। ६. उद्-

गामी बृहदन्त्र। ७. अनुप्रस्थ बृहदन्त्र। ८. अधोगामी बृहदन्त्र। ९. पित्ताशय। १०. मलाशय।

इस महास्रोत्तस से सम्बद्ध कई ग्रन्थियाँ (Glands) भी हैं, जो अपना रासायनिक पाचक रस भोजन पचाने के लिए इसमें भेजती हैं।

१—लाला-ग्रन्थियाँ (Salivary Glands) मुख में स्थित हैं। ये ग्रन्थियाँ लाला-रस को चबाये जाते हुए भोजन में मिलाती हैं। लाला-रस ग्रास को गीला कर निगला जाने योग्य बनाता है। साथ ही श्वेतसार माँड़ (Starch) को शर्करा के रूप में परिवर्तित करता है। दोनों क्रियाएँ पाचन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। अतः भोजन चबाने के ऊपर जितना ध्यान दिया जाय, उतना ही अच्छा है। अच्छी प्रकार चबाया हुआ भोजन आधा पच गया है, ऐसा समझना चाहिये। मनुष्य के स्वास्थ्य का सबसे बड़ा दुश्मन कब्ज है। यदि भोजन को खूब अच्छी तरह चबाया जाय तो कब्ज होने की सम्भावना बहुत कुछ कम हो जायगी, क्योंकि चबाये हुए भोजन पर सभी पाचक-रस अच्छी प्रकार क्रिया कर सकेंगे। भोजन को चबाने की प्रारम्भिक सामान्य क्रिया आपके शारीरिक पोषण से सीधा सम्बन्ध रखती है। अतः इसकी अवहेलना करना नितान्त अनुचित है।

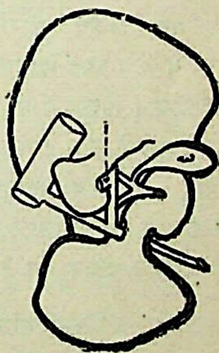
२—आमाशयिक पाचक-रस-ग्रन्थियाँ (Gastric Glands)—ये ग्रन्थियाँ आमाशय के आन्तरिक आवरण—श्लैष्मिक कला—में विद्यमान् हैं, जिनके छिद्र-रूप मुख उस पृष्ठ पर सूक्ष्म-दर्शक यंत्र से देखे जा सकते हैं। इनमें से "आमाशयिक पाचक रस" क्षरित होता है। इस रस में हाइड्रोक्लोरिक एसिड की उपस्थिति से हानिकारक कृमियों को मारने का सामर्थ्य है। यह दूध को फाड़ देता है तथा भोजन की प्रत्यामिनों पर विशेष रासायनिक क्रिया करता है।

प्रत्यामीन Proteins—मांस बनाने वाले, अत्यन्त जटिल (Com-(plex Compound) हैं। यह पदार्थ के समूहों की लम्बी शृंखला है। प्रत्येक 'पदार्थ-समूह' में नत्रजन (Nitrogen) अवश्य रहती है।

प्रोटीन की शृंखला की कड़ियों को एमिनो एसिड (Amino Acid) कहते हैं। Amino Acid में से वे अधिक लाभकर हैं, जिनमें Benzene Neucleus होता है। कम उपयोगी अर्थात् Benzene Neucleus–रहित Amino-Acids रक्त-द्वारा यकृत में पहुँचा दिये जाते हैं, जहाँ पर मूत्र या यूरिया Uric Acid के रूप में परिवर्तित कर मूत्र-मार्ग से बाहर निकाल दिये जाते हैं। सारांश यह कि प्रोटीन दो प्रकार के होते हैं, उत्तम व साधारण। उत्तम प्रकार के प्रोटीन शरीर के लिए आवश्यक हैं, जो प्राणिजन्य भोज्य पदार्थ, जैसे––दुग्ध, मांस आदि में अधिकता से पाये जाते हैं। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को विशेष कर व्यायाम-शील को दुग्धादि का सेवन अत्यावश्यक है।

३—यकृत (Liver)—शरीर में यह सबसे बड़ी गहरे लाल रंग की ग्रन्थि है। जो वक्षोदर मध्यस्थ पेशी के नीचे दायीं ओर स्थित है। इसका ऊपरी पृष्ठ उन्नतोदर है, जो उक्त पेशी के उन्नतोदर पृष्ठ के नीचे ठीक आ जाता है।

यकृत के दो भाग हैं–एक दायाँ व दूसरा बायाँ। ये विभाग इसके निचले पार्श्व में तीन प्रणालियों के प्रवेश करने के कारण बने हैं। यकृत से सम्बद्ध निम्न चार प्रणालियाँ हैं—
१. दक्षिणार्ध। २. वामार्ध। ३. पित्ताशय।
४. आमाशय, पक्वाशय, अग्न्याशय आदि पाचक अवयवों से मैला रक्त, जिसमें पोषक आहार रस भी मिला है, लाने वाली शिरा (Portal Vein)।



यकृत का निचला पृष्ठ

१—यकृत-धमनी (Hepatic Artery)—यह शुद्ध रक्त महाधमनी में से लाकर यकृत में पहुँचाती है।

(क)

२—पाचक-अवयवों से आने वाली शिरा (Portal Vein)—यह शिरा आमाशय, पक्वाशय, क्लोम-ग्रन्थि (Pancreas) और प्लीहा (Spleen) से पोषक-तत्त्व-युक्त आहार-रस तथा दूषित रक्त (Venous Blood) यकृत में पहुँचाती है।

३—पित्ताशय—प्रणाली (Pepatic Duct)—यकृत द्वारा तैयार किये पित्त (Bile) को पक्वाशय में ले जाती है।

(ख)

यकृत-शिरा (Hepatic Vein)—यकृत से रक्त को संचित कर ऊर्ध्वगामी महाशिरा में पहुचाती है। प्रथम दो प्रणालियाँ यकृत में रक्त को पहुंचाती हैं तथा बाद की दोनों यकृत से पित्त और रक्त को बाहर ले जाती हैं।

यकृत विशेष प्रकार के यकृत-कोषों (Liver celis) से बना है। ये कोष रक्त में से पित्त नामक पाचक रस तैयार करते हैं, जो पित्ताशय (पित्ताशय की प्रणाली से सम्बद्ध छोटी थैली है, जो यकृत के निचले पृष्ठ के साथ स्थित है) में इकट्ठा होकर समय पर काम आता है। अर्थात् भोजन जब पक्वाशय में पहुँचता है, तब पित्ताशय में से पित्त "पित्ताशय की प्रणाली" द्वारा उसमें मिलता है। पित्त अग्न्याशय के रस का सहायक पाचक रस है।

यकृत के पित्त-निर्माण के अतिरिक्त ३ और प्रधान कार्य हैं। १—आमाशयिक शिरा (Gastric Vein) जो रक्त लाती है, उसमें भोजन के पोषक तत्त्व अधिकता से रहते हैं। यकृत इस रक्त में से भोजन के कार्बोदितों को, जो ग्लूकोज-रूपी सरल शर्करा में हो गये हैं, मधुजन में बदल देता है। आवश्यक ग्लूकोज रक्त के साथ ताप और शक्ति पैदा करने के लिए अंगों में चली जाती है और अतिरिक्त ग्लूकोज को मधुजन (Clycogen) के रूप में अपने अन्दर इकट्ठा कर रखता है। इस

तरह यकृत शर्करा को निरन्तर एक समान मात्रा में भेजते रहने का प्रबन्ध करता है।

२—निम्न कोटि की प्रोटीन को यूरिया में बदलकर मूत्र-मार्ग द्वारा बाहर भेजने के लिए प्रस्तुत करता है।

३—वसा को तोड़ता है। यह कार्य पित्त और यकृत के कोष दोनों करते हैं।

४--कोलम-ग्रन्थि, अग्न्याशय (Pancreas)--पक्वाशय के मोड़ के बाँईं ओर आमाशय के नीचे प्लीहा तक फैली है। यह एक प्रणाली द्वारा अपना तेज पाचक रस पक्वाशय में पहुँचाती है। यह कोल्म-रस आन्त्रस्थ-ग्रन्थियों के रस के साथ मिलकर प्रोटीनों को पेप्टोन्स (Popt ones) में बदल देता है। यह माँड़ को शर्करा में और वसा को Fatty-acid और मधुरिन (Glycerine) की शकल में लाता है।

महास्रोतस् में भोजन की मात्रा

भोजन ग्रास-रूप में मुख में पहुँचाया जाता है। यहाँ पर इसे दाँतों की चक्की में खूब पीसा जाता है और साथ में लाला-रस (Salivary-juice) मिलता है। यह लाला-रस काब्रोज (शर्करा और माँड़) को माल्टोज में बदल देता है। लाला-रस के मिलने से ग्रास चिकना हो जाता है, जिससे यह सरलता से, एवं आन्तरिक कोमल श्लैष्मिक कला (महा-स्रोतस को भीतर से ढँकनेवाली लाल रंग की त्वचा) को हानि पहुंचाये बिना अन्न प्रणाली में फिसलता है। महास्रोतस् में भोजन को आगे बढ़ाने के लिए एक विशेष प्रकार की लहरदार गति (Periotaltic-Motion) होती है। इस गतिविशेष के द्वारा ही खाद्य पदार्थ छोटी और बड़ी आंतो में गति करते हुए मलाशय तक पहुँचते हैं।

आमाशय में भोजन जाकर आमाशय की दीवार को मांस-पेशियों की गति द्वारा मथा जाता है। यहाँ पर कार्बोज का पाचन बन्द हो जाता

है, क्योंकि आमाशयिक रस केवल प्रत्यामीन (Protien) पर ही क्रिया करता है। आमाशय में पहुँचने के आध घण्टे बाद मथित और अर्धपचित दुधियाला द्रव (Chemy) पक्वाशय में जाना प्रारम्भ होता है। आमाशय का यह निचला द्वार आध-आध घण्टे के अन्तर से खुलता है। लगभग ३ घण्टे के बाद तक सम्पूर्ण भोजन आमाशय को खाली कर पक्वाशय में पहुँच जाता है।

पक्वाशय में पित्त और क्लोम-ग्रन्थि का पाचक-रस आकर मिलता है तथा आन्त्रस्थ-ग्रन्थियों का भी पाचक-रस सहायता करता है। यहाँ पर प्रत्यामीन, वसा और कार्बोज—तीनों का पाचन होता है। प्रत्यामीन और कार्बोज का स्वरस आन्त्रस्थ रक्त की केशिकाओं द्वारा शोषित होकर सीधा रक्त में मिल जाता है। वसा का शोषण लसीका-वाहिनियों (Lymphatic System) की केशिकाओं के जाल से शोषित होकर इसी संस्थान में जाता है। बाद को रक्त में मिलाया जाता है। २२॥ फिट लम्बी छोटी आँतों में से भोजन को गुजरने में लगभग ४॥ घण्टे लगते हैं। इस समय पाचन की दोनों प्रधान क्रियायें—(१) पाचक रसों की रासायनिक क्रिया द्वारा भोज्य पदार्थों को घुलनशील और शोषण योग्य बनाना और (२) पचित भोजन स्वरस को शोषण-संस्थान द्वारा शोषित करना—यथापूर्व होती रहती हैं।

भोजन करने के ८ घण्टे बाद शोषण से अवशिष्ट फल्गु (फोक) वृहदन्त्र के प्रारम्भ में पहुँचता है। वृहदन्त्र में पाचन-क्रिया प्रायः समाप्त हो जाती है। जलीय अंश का शोषण मुख्यतया यहीं होता है। वृहदन्त्र में फल्गु को १२ से १८ घण्टे तक रहना होता है। अन्त में यह आँतों की लहरदार गति द्वारा मलाशय में पहुँचा दिया जाता है, जहाँ से मल रूप में बाहर हो जाता है। संक्षेप में वृहदन्त्र के निम्न कार्य हैं—(१) भोज्य पदार्थ को चिकना करने के लिए एक स्निग्ध पदार्थ को उपस्थित करना, (२) न पचने वाले शाक-सब्जी तथा फलों के नसों

वाले भाग (Cellulose) को सड़ाना और (३) जलीय अंश को सोखना।

शाक-सब्जियों का नसों वाला भाग बृहदन्त्र की लहरदार गति द्वारा आसानी से शेष फल्गु को साथ लिए हुए ऊपर को (क्योंकि बृहदन्त्र का प्रारम्भिक भाग आरोही है) ढकेला जाता है। जिस भोजन में यह नसोंवाला सब्जियों का भाग नहीं होता, वह बृहदन्त्र में देरी से आगे बढ़ पाता है। अतः आँतों की लहरदार क्रिया के लिए ऐसा पदार्थ उपयोगी है। इसलिए कब्ज के रोगियों को शाक-सब्जी पर्याप्त मात्रा में लेनी चाहिए।

बृहदन्त्र की कुल लम्बाई ४ फोट है। इससे स्पष्ट है कि यहाँ पर भोजन का फल्गु अति मन्द गति से आगे बढ़ता है। इस प्रकार सम्पूर्ण पाचन-क्रिया में २८ से ३६ घण्टे तक लगते हैं।

भोजन के छः तत्त्वों का पाचन

भोजन को पानी, खनिज-लवण, जीवनसत् (Vitamins), प्रत्यामीन, वसा और कार्बोज में विभक्त किया जाता है। भोजन का जलीय अंश सम्पूर्ण महास्रोतस् में शोषित होता है, पर बृहदन्त्र में विशेष रूप से। यह रक्त में मिलता रहता है। अनावश्यक भाग व स्वास के साथ जलकण होकर, पसीना और मूत्र के रूप में बाहर हो जाता है। खनिज पदार्थ भी शोषित होकर रक्त में मिलकर यथा स्थान काम आते हैं। खाद्योजों का भी शरीर में महत्वपूर्ण उपयोग है। इसे हम आगे देखेंगे।

भोजन के ठोस पदार्थों को पाचन-रसों द्वारा घुलनशील और शोषक-प्रणालियों के सूक्ष्म आवरण द्वारा चूसे जा सकने योग्य बनाया जाता है। लाला-रस में Ptyalin नामक एक रासायनिक जीवाणु (Chemical Agents Engyme) होता है, जो कार्बोज को मुख में चबाये जाने के समय ही अङ्गूरी शर्करा में परिणत करता है। अङ्गूरी शर्करा

शरीर में शोषित होकर जलती है, जिससे ताप और मांसल शक्ति प्राप्त होती है। कार्बोज पर यह क्रिया थोड़ी देर हो पाती है; क्योंकि यह शीघ्र निगला जाकर आमाशय में पहुँचता है, जहाँ आमाशयिक रस के अम्लीय होने के कारण टायलिन (Ptyalin) की क्रिया बन्द हो जाती है। पक्वाशय में कार्बोज की पाचन-क्रिया पुनः प्रारम्भ होती है। वहाँ पर पाचक-रस क्षारीय हैं।

आमाशयिक पाचक रस 'रासायनिक जीवाणु' पेपसीन (Pepsin) है, जो हाईड्रो क्लोरिक एसिड (आमाशय में प्राप्त होता है) के सहयोग से प्रत्यामीनों को (Peptones) प्रत्यामीन के सरल घटक में बदल देता है। पेप्टोन अधिक घुलनशील और शोषक प्रणालियों के आवरण में से क्षरणशील (Diffusible) है। अतः शोपित होकर रक्त में सीधे मिल जाते हैं और रक्त द्वारा कोषों और तन्तुओं के पास पहुँचते हैं, जहाँ वे आवश्यकतानुसार चुने जाकर मरम्मत तथा नवीन कोषों के निर्माण के काम आते हैं। प्रत्यामीनों के पाचन की क्रिया पक्वाशय व क्षुद्रान्त में होती रहती है; क्योंकि क्लोमग्रन्थि का रस वसाकार्बोज और प्रत्यामीन तीनों पर क्रिया करता है।

आमाशय में मथित होकर भोजन-स्वरस (Coyme) पक्वाशय में प्रविष्ट होता है। आमाशय में वसा शारीरिक उष्णता से पिघल जाती है, तथा उसके प्रत्यामीन वाले आवरण भी आमाशयिक पाचक रस के प्रभाव से घुल जाते हैं। पक्वाशय में वसा को, क्लोमरस का रासायनिक जीवाणु (Lipase) पित्त की सहायता से मधुरिन (Glycerine) और मज्जकाम्ल (Baty acid) में परिवर्तित कर देता है। Fatty acid मुक्त होकर क्षार के साथ दुधियाला घोल (Emulsion) बनाता है। यह दुधियाला घोल Lymphatic Vessels द्वारा शोषित होता है। फिर रक्त में मिलता है। रक्त में से वसा तन्तुओं और कोषों के पास पहुँचती है, जहाँ पर यह शक्ति और ताप पैदा करने के

लिए जलती है, जिससे जल-कण और कार्बोलिक एसिड पैदा होते हैं, जो फेफड़ों में ले जाकर निकाल दिये जाते हैं। कुछ वसा, जिसकी कि उसी समय जलने की आवश्यकता नहीं होती है, विशेष प्रकार के कोषों द्वारा जमा कर ली जाती है।

वसा शारीरिक ताप को स्थिर रखने के लिए मुख्य इंधन है। इससे शरीर में चिकनाहट तथा सुडौलता आती है। कोमल अङ्गों की रक्षा करने के लिए इसका आवरण उपयोगी है।

अब हमें यह देखना है कि पक्वाशय में जाकर Chyem के प्रत्यामिनों का क्या होता है। हम यह कह चुके हैं कि क्लोम-रस वसा, कार्वोज और प्रत्यामीन—तीनों पर आक्रमण करता है। क्योंकि इस पाचक रस में ३ रासायनिक Enzymes होते हैं जिनका वर्णन नीचे दिया जाता है :

१—ट्रिपसिन—(Trypsin) यह प्रत्यामीनों को विना हाइड्रो-क्लोरिक एसिड की सहायता से ही घुलनशील व क्षरणशील एमीनो एसिड में परिवर्तित कर देता है।

२—एमाइलेज (Amylase)—कार्वोज को माल्टोज (Moltose) की शर्करा में बदलता है। इस कार्बोज का पाचन मुख में ही प्रारम्भ हुआ था, पर आमाशय में स्थगित होकर पक्वाशय में पुनः प्रारम्भ हो गया।

३—लाइपेज (Lipase) यह रासायनिक प्रेरक है, जो वसा को सरलतम तत्त्वों—फैटी और ग्लिसरीन—में परिवर्तित करता है।

इस प्रकार पक्वाशय में प्रत्यामीनों के पेल्टोन्स एमीनो एसिड के रूप में आकर क्षुद्रान्त में शोषित होकर सीधे रक्त में मिल जाते हैं। रक्त इन पचित खाद्य पदार्थों को विभिन्न तन्तुओं और कोषों के पास ले जाकर उन्हें दे देता है और पुनः ये काम आने से अवस्थानुसार कार्बोनिक एसिड गैस यूरिया और जल का रूप धारण कर शरीर से बाहर हो जाते हैं

तथा मरम्मत के काम भी आते हैं। नवीन-कोषों का निर्माण भी इन्हीं से होता है।

संगमरमर के महल की सफाई

हमारा शरीर संगमरमर के महल के समान सुन्दर है। जिस प्रकार संगमरमर का आलीशान महल बिना सफाई के सामान्य मिट्टी के स्वच्छ झोंपड़े से भी हीन है, उसी प्रकार बिना स्वच्छता के यह मानव-शरीर दुर्गन्धित मैल का डिब्बा है; अतः इस सुन्दर शरीर की निरंतर सफाई की सख्त आवश्यकता है। यदि यह कहा जाय कि सम्पूर्ण रोगों का मूल कारण अस्वच्छता है, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। परमात्मा ने वृहदन्त्र के अतिरिक्त तीन बड़े-बड़े अंगों को सफाई के काम पर लगा रखा है, वे निम्नलिखित हैं।

१—त्वचा (Skin) सम्पूर्ण शरीर को ढँके हुए है। इसकी रचना ऐसी है कि भीतर से दूषित रक्त पसीना आदि तो निकल सकते हैं, पर हानिकारक कृमि आदि प्रविष्ट नहीं हो सकते। सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देखने पर त्वचा के ऊपर अत्यन्त छोटे-छोटे छिद्र दीखेंगे। इन छिद्रों से अनावश्यक पसीना दूषित खनिजों को साथ लिए हुए हर समय बाहर निकलता रहता है। यह पसीने का पानी शारीरिक उष्णता से बाष्प बनकर वायु में उड़ता रहता है। उष्णता के इस प्रकार व्यय होते रहने से शरीर का तापमान अधिक नहीं होने पाता। अर्थात् त्वचा ठण्ढ पहुँचाने का काम भी करती है।

इसके अतिरिक्त इन्हीं छोटे छिद्रों से एक प्रकार का तेल-सा निकलता है, जो त्वचा को स्निग्ध बनाये रखता है। त्वचा में तेलों को सोखने की भी शक्ति है। इसलिए तेल को त्वचा पर मलकर हम त्वचा की खुराक उसे पहुँचा सकते हैं।

त्वचा के द्वारा कान्ति, ओज और रक्तवर्ण प्रकट होता है। अतः किसी व्यक्ति के स्वास्थ्य का अन्दाजा लगाने के लिए त्वचा प्रत्यक्ष साधन

है। त्वचा के नीचे वसा की एक तह रहती है, जो शारीरिक ताप को निरन्तर अनावश्यक रूप से नष्ट होने से बचाती रहती है।

त्वचा की रक्षा, स्वस्थता और कान्ति-वृद्धि के लिए स्नान, तेल-मालिश, अखाड़े की मिट्टी में लोटना, धूप स्नान और उबटन तथा सफाई अत्यन्त हितकर हैं। सौन्दर्य-वृद्धि के प्राकृतिक उपाय सरल और कम खर्च के हैं।

२— फेफड़े (Lungs)— पहले कहा जा चुका है कि फेफड़े जीवन-दायिनी ओषजन (Oxygen) प्रदाता और दूषित कार्बोनिक एसिड गैस को बाहर निकालने वाले हैं। फेफड़े के कार्य के महत्त्व को हम अति शीघ्र समझ सकते हैं। क्षणभर के लिए यदि हम फेफड़ों को छुट्टी दे दें और श्वास छोड़ना बन्द कर दें तो हमारे शरीर में बेचैनी का उत्पात खड़ा हो जायगा। व्यायाम करने से जो थकान हमें अनुभव होने लगती है, उसका कारण यह है कि उस स्थान पर कार्बोनिक एसिड तन्तुओं व कोषों के टूट-फूट के अंश जमा हो जाते हैं। थोड़ी देर व्यायाम बन्द करने पर रक्त-प्रवाह के साथ यह सब कचरा फेफड़ों द्वारा बाहर कर दिया जाता है। इससे हम पूर्ववत् स्वस्थ हो जाते हैं। यह सब फेफड़ों की सफाई करने की शक्ति का फल है। फुफ्फुस प्रवास के साथ जलीय अंश को भी बाहर निकालते रहते हैं।

३—वृक्क (Kidney)—संख्या में दो हैं, जो उदर में मेरुदंड के साथ दाँये-बाँये स्थित हैं। इन दोनों में से एक-एक नली नीचे की ओर जाकर वस्तिगह्वर के निम्न-भाग में स्थित मूत्राशय में मिल जाती है। वृक्क रक्त में से यूरिया को तथा जल को अलग कर मूत्राशय में भेजते रहते हैं, जो समय पर मूत्र के रूप में बाहर कर दिया जाता है। इस प्रकार वृक्क रक्त में से बहुत-सी गन्दगी को निकालते रहते हैं।

परमात्मा की इन रचनाओं से स्पष्ट है कि शरीर को निरन्तर स्वच्छता की आवश्यकता है। यदि थोड़ी देर के लिए शरीर के ये अछूत

भङ्गी-फुपफुस, त्वचा और वृक्क—हड़ताल कर दें तो जीवन-लीला संङ्कट में पड़ जाय। व्यायाम के द्वारा इन तीनों की सफाई करने की गति तीव्र हो जाती है। अतः हम कह सकते हैं कि व्यायाम शरीर की सफाई में सहायता करता है। इसलिए व्यायामशील के शरीर रूपी साफ महल में घुसने से रोग भय खाते हैं। क्योंकि रोगों को गन्दगी से बड़ा प्रेम है।

संतुलित भोजन का चुनाव

हमें छः बातों की आवश्यकता है :

१. पोषण — २. वृद्धि
३. पुनर्निर्माण (मरम्मत) — ४. काम काज की शक्ति व बल
५. स्वास्थ्य (शरीर व मन का) — ६. तन्दुरुस्ती Keep. Fit

इनके लिए इन छः को ठीक व्यवहार में लाओ :

१. वायु — २. सूर्य का ताप व प्रकाश
३. जल — ४. भोजन
५. व्यायाम — ६. निद्रा (विश्राम) और ब्रह्मचर्य

यहाँ पर हम इन छः में से भोजन का विचार करेंगे :

भोजन के ६ तत्व हैं।

१. निर्माण के
- १. प्रत्यामीन (मांस) बनाने वाले
- ३. खनिज लवण

२. ईंधन
- २. कार्बोज (श्वेतसार-शर्करा)
- ४. वसा (चिकनाई)

३. कार्य चलाने
- ५. जीवन-सत्
- ६. जल

भोजन के दो प्रधान उद्देश्य हैं १—शरीर की वृद्धि, पोषण और मरम्मत के लिए निर्माण करने वाले पदार्थों को प्रस्तुत करना और २—रात-दिन ऐच्छिक, अनैच्छिक कार्य-सम्पादन के लिए शक्ति देना, ताप देना-इसलिए भोजन के तत्वों में १—प्रत्यामीन (मांस-तन्तु बनाने वाले)

और २—खनिज (अस्थि बनाने वाले) निर्माणकारी पदार्थ पाये जाते हैं। दूसरे प्रकार १ के—कार्वोज और २—वसा नामक इंधन ज्वलनशील पदार्थ हैं, जो ओषदीकरण (ज्वलन) द्वारा ताप पैदा कर शक्ति में परिवर्तित होते हैं। जिससे शरीर के सम्पूर्ण कार्य चलते हैं।

भोज्य पदार्थों की तीसरी श्रेणी में जीवनसत् और जल हैं। खाद्योजों का रासायनिक विश्लेषण व कार्य-विधि पूर्णतया अभी तक ज्ञात नहीं है। फिर भी हम इन्हें शरीर के महान् इञ्जीनियर जीवनी शक्ति के सहायक मजदूर कह सकते हैं। इनकी अनुपस्थिति में प्रत्यामीन, खनिज, वसा व कार्वोज शरीर-रूपी मकान का निर्माण व मरम्मत नहीं कर सकेंगे। जैसे ईंट व चूने के होने पर भी मजदूरों के बिना मकान नहीं बन सकता; उसी प्रकार जल भी शरीर की सभी क्रियाओं में अत्यन्त सहायक है। अतः इसकी गणना भी इसी तीसरे विभाग में की गई है। शरीर में जल के निम्नलिखित कार्य हैं।

१—शरीर के ताप को सीमित रखना।

२—रक्त को जलाभाव से गाढ़ा होने से बचाना।

३—त्वचा तथा मांस-तन्तुओं को आर्द्र रखना।

४—शरीर की स्वच्छता बनाये रखना।

भोजन के इन छः तत्वों का विशेष विवरण नीचे दिया जा रहा है।

प्रत्यामीन (Protien)—हमारे शरीर रूपी भवन की ईंटें छोटे-छोटे कोष हैं। इन कोषों का निर्माण "जीवन की मिट्टी" (Protoplasm) से हुआ है। जीवन की इस मिट्टी या प्रोटोप्लाज्म में प्रोटीन नामक जटिल-समास मुख्य रूप से है। यह लचीला पदार्थ है। इसे कभी-कभी ऐल्ब्यूमिनस पदार्थ भी कहते हैं। नाइट्रोजन प्रोटीन के सभी समासों में उपस्थित रहता है। शरीर-वृद्धि के समय नये कोषों के निर्माण के लिए इन प्रत्यामीनों की अत्यन्त आवश्यकता होती है। मरम्मत के लिए भी प्रत्यामीन ही काम आते हैं। शरीर के मूल्यवान् अवयव मस्तिष्क,

यकृत, हृदय और वृक्कों का निर्माण इसी से हुआ है। अतः यह निर्माणकारी पदार्थ है।

प्रत्यामीनों को जीवित कोष (जन्तुओं के या वनस्पतियों के) ही उत्पन्न करते हैं। अतः प्रत्यामीनें दो प्रकार की होती हैं। १—जान्तविक और २—वानस्पतिक।

१. जान्तविक प्रत्यामीन—दुग्ध, मांस, अण्डा और मछली द्वारा हम प्राप्त करते हैं। यह मनुष्य के लिए उत्तम प्रकार की है।

२. वानस्पतिक प्रत्यामीन—विविध अन्नों (यथा—गेहूँ, जौ, बाजरा, चना, मसूर आदि), गिरियों, शाक-सब्जियों और फलों में से प्राप्त होती है। यह मनुष्य के लिए घटिया दर्जे की है।

मनुष्य के शरीर में जो प्रत्यामीन पाई जाती है, वह इन दोनों प्रत्यामीनों से भिन्न है। तथा जान्तविक और वानस्पतिक भी आपस में मेल नहीं खातीं। जब ये दोनों प्रकार की प्रत्यामीनें आमाशय या पक्वाशय में पहुँचती हैं तो इन्हें तोड़कर फिर से मनुष्य-शरीर की प्रत्यामीनों के रूप में बनाया जाता है। टूटे हुए खण्डों को एमीनो एसिड कहते हैं, जिनमें से मनुष्य-शरीर के प्रत्यामीनों को बनाने के लिए उपयुक्त का चुनाव कर लिया जाता है। शेष अनुपयुक्त (घटिया दर्जे की) को वसा के रूप में परिवर्तित कर इंधन बनाकर संगृहीत कर लिया जाता है, अथवा यकृत मूत्र (यूरिया) बनाकर शरीर से बाहर कर देता है।

इस प्रकार उत्तम और घटिया दो प्रकार की प्रत्यामीनें हुईं। हमें अपने भोजन का चुनाव इस प्रकार करना चाहिए कि हम दोनों प्रकार की प्रत्यामीनें प्राप्त कर सकें। ऐसा करना सस्ता और लाभजनक भी रहेगा।

अधिकांश भारतवासी निर्धनतावश या अज्ञान से केवल रोटी-दाल और सब्जी पर ही निर्वाह करते हैं। इससे उनका पूर्ण शारीरिक विकास नहीं हो पाता। बच्चों के शरीर के उचित विकास के लिए उत्तम प्रकार की प्रत्यामीनों का होना अत्यन्त आवश्यक है। दुग्ध, मांस, अण्डे आदि

को खाकर उत्तम प्रत्यामीन लेना चाहिए। भारतीय व्यापारिक शिष्ट-मण्डल के एक सदस्य सर सुल्तान चिनीय ने अपनी अमेरिका-यात्रा वापसी में प्रकट किया कि "भारत में जितना पानी मिलता है, अमेरिका में उतना दूध मिल जाता है।"

व्यायामशील व्यक्ति को अपने भोजन का चुनाव सावधानी से करना चाहिये। बिना उत्तम भोजन के व्यायाम करना शरीर पर अत्याचार है, क्योंकि शरीर का विकास भोजन पर ही अवलम्बित है। दूध, दही, मक्खन, पनीर, श्रीखण्ड, रायता और दूध के अन्य पदार्थों का सेवन यथेच्छ करने से शरीर का विकास अवश्यम्भावी है।

निम्न भोजनों में उत्तम प्रकार की प्रत्यामीन पाई जाती है। दूध, दही, मट्ठा, पनीर, श्रीखण्ड, अण्डा, मांस, बकरे का यकृत व जिगर, मछली और कुछ हरे पत्तों की सब्जियाँ जैसे पालक।

खनिज—खाने का सादा नमक, प्रस्फुरक, गन्धक और कैल्शियम आदि के लगभग बीस खनिज हमारे शरीर में पाये जाते हैं। अस्थियों और दाँतों के निर्माण में इनका प्रमुख भाग है। परन्तु मांस, रक्त व अन्य शरीर के रस भी इन खनिजों के बिना ठीक कार्य नहीं कर सकते। रक्त के लाल कणों के हिमोग्लोबीन में लोहा "ओषजन-वाहक" के रूप में उपयोगी काम करता है। अतः भोजन में भी सभी प्रकार के खनिजों का होना आवश्यक है। जिस प्रकार बिना भोजन के मृत्यु हो जाती है, वैसे ही खनिजों के बिना भी जीवन नहीं टिक सकता।

कुछ खनिज क्षारीय हैं और कुछ अम्लीय प्रतिक्रिया पैदा करते हैं। जब दोनों प्रकार के खनिजों का अनुपात ठीक रहता है, तो शरीर स्वस्थ रहता है। फल-फूल, शाक-भाजी और कन्द-मूल में क्षारीय खनिज बहुतायत से तथा अम्लीय कम मात्रा में होते हैं। इसके विपरीत विविध अन्नों, दालों और मांस में अम्लीय खनिज अधिक होते हैं। अतः भोजन का चुनाव करते समय दोनों प्रकार के खाद्य पदार्थों का उपयोग करना चाहिए। दूध में लोहे को छोड़कर सभी खनिज ठीक अनुपात में हैं।

दुग्ध, शाक-भाजी, फल, अन्न व दाल जिस भोजन में सम्मिलित हैं, वह सन्तुलित भोजन है। अर्थात् उसमें सभी आवश्यक तत्त्व उचित अनुपात में विद्यमान हैं। यही संतुलित भोजन लेने योग्य है।

वसा—जलकर ताप व शक्ति देने वाले पदार्थों में वसा प्रमुख है। कार्बोज की अपेक्षा वसा दुगुनी शक्ति प्रदान करती है। वसा समय पर काम आने के लिए शरीर में सञ्चित होती जाती है। त्वचा के नीचे वसा के इकट्ठा हो जाने से शरीर में ताप बाहर निकलकर नष्ट होने से बचता है। हम घृत, मक्खन, चर्बी और वानस्पतिक तेल खाकर इसे प्राप्त कर सकते हैं।

प्रत्यामीन की तरह प्राणियों द्वारा प्राप्त वसा अत्युत्तम है। इसमें विटामिन "ए" अपेक्षाकृत अधिक पाया जाता है। अतः पोषण की दृष्टि से घृत, चर्बी, मक्खन, मछली के यकृत का तेल (Cod liver oil) और अण्डे की पीतिमा (Eggyalk) बहुत अधिक महत्व के हैं। कारखानों में बना वनस्पति घी तो विटामिन "ए" से सर्वथा रहित है। इस घी की अपेक्षा वानस्पतिक तेल अधिक पोषक है।

प्राणियों द्वारा प्राप्त वसा में विटामिन "ए" की अधिकता है जो कि वृद्धि, स्वास्थ्य और फैलने वाले रोगों के विरुद्ध प्रति-शक्ति (मुकाबला करने की शक्ति) के लिए आवश्यक है : यहाँ पर यह कह देना प्रासंगिक है कि इन सब दृष्टियों से गौ-भैंस का ताजा शुद्ध घी कितने अधिक महत्त्व का है। धार्मिक दृष्टि से जो लोग घी, मक्खन के अतिरिक्त दूसरे प्राणिजन्य वसा ग्रहण नहीं कर सकते, उनके लिए गो-घृत और भैंस का घी ही सेवनीय रह जाता है। वैद्यवर लोलिम्बराज के मत में तो बल, वीर्य बढ़ाने के लिए घी-दूध से बढ़कर कोई रसायन ही नहीं है। वे कहते हैं :

सौभाग्य–पुष्टि–बल–शुक्र–विवर्धनानि,
किं सन्ति नो भुवि बहूनि रसायनानि ?
कन्दर्प–वर्धन–करस्तु सिताज्य–युक्ताद्
दुग्धादृते न मम कोऽपि मतः प्रयोगः।

भारतीय तत्त्वज्ञान की दृष्टि से घी-दूध सात्त्विक भी है। उनकी दृष्टि में आहार तीन प्रकार का होता है--तामसिक, राजस, और सात्त्विक। तामसिक भोजन निकृष्ट और सात्त्विक सर्वात्तम है। अनुभव से यह सिद्ध होता है कि सात्त्विक पदार्थ बुद्धि और मन पर सौम्य प्रभाव रखने के कारण मानसिक व बौद्धिक स्वास्थ्य पर भी उत्तम असर रखते हैं। जब कि मांस व मछली के यकृत के तेल आदि वर्तमान वैज्ञानिक दृष्टि से उत्तम कोटि के आहार होने पर भी उतने बुद्धि-वर्धक नहीं।

वसा के निम्न कार्य हैं--(१) शक्ति व विटामिन "ए" देता है। (२) शरीर के गढ़ों को भरकर चिकना, सुन्दर और लावण्यमय बनाता है। (३) कोमल अंगों की रक्षा करता है। (४) कैल्शियम के शोषण में सहायक हैं। (५) विटामिन "ए" के कारण रोगों के आक्रमण के विरुद्ध 'प्रति-शक्ति' देता है।

व्यायामशीलों का घी और दुग्ध ही एकमात्र सहारा है।

कर्बोज--भोजन का अधिकांश भाग इसका होता है। इसके दो भेद हैं—शर्करा और श्वेतसार। कार्बोज की शक्ति के कारण शरीर प्रत्यामीन, खनिज और वसा व खाद्योज का समुचित उपयोग करने में समर्थ है। शेष भोज्य-पदार्थ—प्रत्यामोन, वसा, खाद्योज और लवण--के साथ कार्बोज का उचित मिश्रण सुपच है। विपरीत होने पर भोजन आँतों में सड़ता है। अतः सभी पदार्थों का भोजन में उचित सम्मिश्रण होना चाहिए।

खाद्योज "बी" कार्बोज के समुचित उपयोग के लिए आवश्यक है। पाचन क्रिया में इसका बहुत उपयोग है। अतः कार्बोज के मुख्य स्रोत अन्न व दालों के ऊपरी छिलके में प्रकृति ने खाद्योज को सुरक्षित किया है। जो लोग इन अन्नों का ऊपरी छिलका उतरवाकर—जैसे चावलों को पालिश करवाकर—खाते हैं, वे खाद्य का उत्तम अंश नष्ट कर देते हैं। अतः हाथ-कुटे और हाथ-पिसे आटे, चावल का उपयोग करना चाहिए।

खाद्योज—लगभग चौथाई सदी पूर्व कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के अध्यापक हॉपकिन्स ने दूध को सुखाकर चूर्ण तैयार किया। इस चूर्ण में दूध की सर्वोत्तम प्रत्यामीन, सर्वोत्तम वसा और कार्वोज मौजूद थी। इस चूर्ण द्वारा तैयार किये गये बनावटी दूध पर कुछ चूहों को रखा गया। परिणाम यह हुआ कि वे सभी चूहे मर गये। इस परीक्षण से यह साबित हुआ कि ताजे दूध में प्रत्यामीन, वसा आदि के अतिरिक्त एक अन्य अदृश्य तत्त्व भी रहता है, जो जीवन के लिए आवश्यक है। अतः कहा जा सकता है कि ताजे और प्रकृति द्वारा प्रस्तुत खाद्य पदार्थों में एक ऐसी अदृश्य तथा न तौले और न छुई जा सकने योग्य शक्ति विद्यमान है, जो शरीर में जाकर जीवन-शक्ति के सहायक कारीगरों के रूप में कार्य करती है। इन्हें 'खाद्योज' नाम दिया गया है। इन खाद्योजों' के अभाव में भोजन निर्वीर्य है और बहुत से रोग भी पैदा हो जाते हैं।

विविध प्राकृतिक भोज्य पदार्थों में ये खाद्योज रहते हैं। ताप से ये शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। ताजे दूध को खुले बर्तन में अधिक गरम करने से खाद्योज "ए" नष्ट होता है। खाद्योज ए० बी० सी० डी० और ई० अभी तक विशेष रूप से जाने गये हैं।

खाद्योज किस प्रकार काम करते है, इसे हम निम्न उदाहरण से समझ सकते हैं। यदि हमारे भोजन में पर्याप्त कैल्शियम और फास्फोरस नहीं होगी, तो अस्थियाँ मुलायम होकर मुड़ जायँगी। इस रोग का नाम Rickets है। अगर भोजन में उक्त दोनों खनिज हों, पर खाद्योज 'डी' न हो, तब भी यही रोग हो जाता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि निर्माणकारी पदार्थों (खनिज) के या निर्माण करने वाले मजदूरों (खाद्योजों) के अभाव में शरीर समान रूप से हानि उठायेगा।

निम्न कोष्ठक से भिन्न-भिन्न प्रकार के खाद्योजों की उत्पत्ति, उनके कार्य और वे किन-किन खाद्य-पदार्थों में से पाये जाते हैं, यह ज्ञात होगा। इसकी सहायता से हम भोजन का चुनाव ठीक ढंग से कर सकेंगे।

नामखाद्योज	उत्पत्ति कैसे होती है ?	किन खाद्यों में अधिक है ?	शरीर में क्या कार्य करता है ?
ए	(१) पौधों के हरे पत्तों पर सूर्य की किरणों की क्रिया से पैदा होता है। (२) हरी ताजी वनस्पति खाने वाले पशुओं के शरीर में जमा हो जाती है।	दुग्ध, मक्खन, घृत, हरी साक–सब्जी, मछलियों व पशुओं के यकृत, वृक्क और वनस्पतियों के नवीन कल्लों में।	(१) शरीरवृद्धि व पुनर्निर्माण। (२) रक्त का मिश्रण ठीक रखती है। (३) त्वचा को स्वस्थ रखती है, अतः रोगों से लड़ने के लिए सामर्थ्य प्रदान करती है।
बी	(१) पौधे भूमि और वायु से पदार्थों को ग्रहण कर इसका निर्माण करते हैं। (२) वनस्पति खाने वाले पशुओं के भेजे, यकृत, वृक्क, हृदय और पाचक, अंगों में जमा होती है।	(१) अन्न व दालों के छिलकों के साथ, दुग्ध, अण्डा, भेजा, यकृत, वृक्क और मछली के तेल में।	(१) वृद्धि व पुनर्निर्माण। (२) मस्तिष्क व वातसंस्थान को स्वस्थ रखती है। (३) हृदय, यकृत, वृक्क और विशेष कर पाचक ग्रंथियों व आँतों को स्वस्थ रखती है।

नामखाद्योज	उत्पत्ति कैसे होती है ?	किन खाद्यों में अधिक है ?	शरीर में क्या कार्य करता है ?
सी	(१) ताजी हरी सब्जियों और फलों में पैदा होती है। (२) वनस्पति को खाने से पशुओं के दूध, रक्त और यकृत में जमा होती है।	(१) फलों (ताजे) के रस में। (२) हरी ताजी सब्जियों में। (३) रक्त, यकृत में। टमाटर, नीबू और सन्तरे के रस में प्रचुर मात्रा में है।	(१) रक्त को ठीक आनुपातिक मिश्रण में रखना। (२) दूसरे खाद्योजों को सहायता करता है। शरीर-निर्माण के कार्य में, दाँतों अस्थियों के लिए विशेष रूप से।
डी	(१) तेल-मालिश के बाद धूप-स्नान करने पर सूर्य-किरणों द्वारा त्वचा पर पैदा होता है।	(१) दूध, घृत, मक्खन में। (२) अण्डे के पीत भाग में और मछली के तेल में।	(१) अस्थि का निर्माण करती है।

जीवट की आनन्दमय जिन्दगी

अधिकांश भारतवासियों का भोजन का चुनाव स्वाद को दृष्टि में रखकर होता है। इसे एक विद्वान् के शब्दों में यों कह सकते हैं कि वे खाने के लिए जिन्दा रहना चाहते हैं। जो लोग अपना स्वास्थ्य ठीक रखना चाहते हैं, उनका सर्वप्रथम कर्तव्य यह है कि वे अपने भोजन को वैज्ञानिक ढंग पर चुनें। बहुत से व्यक्ति अज्ञानवश भोजन पर बिना उचित ध्यान दिए व्यायाम शुरू कर देते हैं, असफल होने पर वे व्यायाम को दोष देते हैं। उनको यह नहीं ज्ञात होता है कि व्यायाम का मूल "सन्तुलित भोजन" में निहित है। व्यायाम बाद की चीज है।

किसी भी खराबी का मूल तत्सम्बन्धी अज्ञान में है। भोजन में क्या खाना चाहिये, इसकी जिज्ञासा हम लोगों को नहीं है। इसका फल यह है कि भारत के बड़े-बड़े शहरों में भी स्वास्थ्यप्रद भोजन मिलना असम्भव-सा ही है। क्योंकि दूकानदार अच्छी तरह जानता है कि हमारे ग्राहक मिर्च-मसालों और चटनियों से पूर्ण सन्तुष्ट हो जायेंगे।

जीवट आनन्दमय जिन्दगी प्राप्त करने के लिए पौष्टिक, सुपच, रुचिकर, संतुलित और सात्त्विक भोजन आवश्यक है। घटिया दर्जे के भोजन से जीवन के आनन्द-रस की प्राप्ति असम्भव है। उत्तम आदर्श भोजन के चुनाव के लिए निम्न सूत्र याद रखिये। हमारे अध्ययन का सारांश यही है।

१. घृत, दुग्ध, दही आदि दूध के पदार्थ।

२. शाक-सब्जी (ताजे) और हरे पत्तों वाली भाजियाँ।

३. मौसमी ऋतु के फल।

४. मांसभोजी के लिए मांस, अण्डे, यकृत आदि।

इन चार चीजों को आवश्यकतानुसार अपने दैनिक भोजन में सम्मिलित करने से वे सभी वस्तुएं प्राप्त होती रहेंगी, जिनकी शरीर को आवश्यकता है।

आहार-शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् कर्नल मेकेरिसन अपने भोजन सम्बन्धी खोजों का निचोड़ इस प्रकार प्रकट करते हैं—"न केवल भारतवर्ष के, अपितु किसी भी देश के बच्चों के ठीक प्रकार से 'संतुलित-भोजन' में निम्न पदार्थ होने चाहिए—(१) किसी समूचे एक दल अन्न का आंटा (२) यथेच्छ दुग्ध और दूध के बने पदार्थ (३) अंकुरित दालें (४) यदि धर्म आज्ञा देता है तो कभी-कभी अण्डा, यकृत, माँस, मछली आदि में से कोई (५) कन्द-मूल (६) हरे पत्तों की सब्जियों की खूब अच्छी मात्रा और (७) फल।

२

श्रद्धा से व्यायाम करो, कल्याण होगा

आप अखबार तो पढ़ते ही होंगे। आकर्षक और विश्वास दिलानेवाले विज्ञापनों पर नजर भी पड़ती ही होगी। कभी किसी चमत्कारी चीज के लिए आप अपने परिश्रम की कमाई में से कुछ दे भी डालते होंगे। परन्तु इन बलवर्धक, पौरुष-प्रदायक औषधियों और रसायनों के विषय में क्या कभी आपने कुछ सोचा भी है? क्षण भर के लिए हम विचार करें तो ज्ञात होगा कि मामूली दो-चार रुपयों की गोलियों में यदि बल, पौरुष और देदीप्यमान स्वास्थ्य भरा होता, तब इस अभागी दुनिया में कौन निस्तेज और दुर्बल नजर आता? सभी स्वास्थ्य-सुख को भोग रहे होते!

सत्य यह है कि मनुष्य के सुख का सार "स्वास्थ्य" इस शब्द में भरा है, जो किसी अखबारी दुनिया की बहु विज्ञापित मनुष्य कृत गलियों में मिलना सर्वथा असंभव है। स्वास्थ्यप्राप्ति की महारसायन और ही है, और वह है "व्यायाम"। बलप्राप्ति और उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति, बिना व्यायाम के कोरी-कल्पना है। यदि आपके अन्दर स्वास्थ्य-प्राप्ति और पूर्ण शारीरिक विकास करने के लिए बलवती इच्छा जागृत हो चुकी है, तो विज्ञापनों की दुनिया से अपने-आप को किनारे कर लीजिये, वैद्य और डाक्टरों के नुस्खे में धन बहाना छोड़ दीजिये। प्रातः काल आध-पौन घण्टा व्यायाम कीजिए। विश्वास रखिये और निश्चय जानिये कि दीर्घकाल तक नियमित व्यायाम करते रहने से आप को सफलता अवश्य मिलेगी।

अडिग श्रद्धा से व्यायाम आपकी काया पलट देगा। शरीर को पूर्ण विकास का अवसर मिलेगा। बुद्धि निर्मल और मन शान्त होगा। अपने

कारोबार में आप उत्साहपूर्वक लग सकेंगे। आपके परिवार में से रोगों का डेरा उखड़ जायगा और देश में उत्तम स्वस्थ सन्तति, जो कि राष्ट्र की सबसे अधिक मूल्यवान् सम्पत्ति है, के आप जन्मदाता होंगे।

रात-दिन जो निर्बल-निस्तेज चेहरे नजर आते हैं, कीड़े-मकोड़ों की तरह पैदा होते हैं और मर जाते हैं, उत्साह, उमंग का दरिया जहाँ सूखता जा रहा है और यौवन के पूर्व बुढ़ापा छा जाता है, यह सब दृश्य क्यों ? केवल इसीलिए कि हमने व्यायाम-चर्या का प्राकृतिक मार्ग छोड़ दिया है। व्यायाम करना हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य है, दैनिक संस्कार है। इस संस्कार को हमें जीवन पर्यन्त अपने तथा मनुष्य-जाति के कल्याण के लिए निभाते रहना चाहिये।

व्यायाम जीवन का लक्षण है। यह उन्नतिशील समाज के लिए भी उपादेय है। भारत को छोड़कर कौन-सा देश है, जहाँ व्यायाम करने के लिए 'राष्ट्रीय संगठन' नहीं है ? क्या हम आशा कर सकते हैं कि व्यायाम द्वारा बिना पूर्ण शारीरिक-विकास के हम अपने राष्ट्र का स्वास्थ्य कायम रख सकते हैं ? कदापि नहीं !

अतः राष्ट्र, समाज और अपने लिए व्यायाम-महारसायन के प्रति श्रद्धा धारण करनी चाहिये। निश्चय करना चाहिए कि हमारी उन्नति की दिनचर्या में व्यायाम भोजन की तरह आवश्यक है।

व्यायाम का शरीर पर प्रभाव और सौन्दर्य-वृद्धि

व्यायाम से शरीर पूर्ण विकास को प्राप्त होता है और अन्य प्रत्यक्ष लाभ भी होते हैं, जिनमें से प्रत्येक अमूल्य हैं। ये लाभ निम्न निर्दिष्ट हैं :

१. क्रियाशीलता या चुस्ती,　　२. बल,

३. सर्वाङ्गिक स्वास्थ्य,　　४. शारीरिक सौन्दर्य

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित है कि किस प्रकार व्यायाम उक्त चारों बातों को प्राप्त कराता है। व्यायाम के उद्देश्य को हम प्रारम्भ में

स्पष्ट कर चुके हैं। जिसका तात्पर्य यह है कि व्यायाम का प्रधान उद्देश्य आन्तरिक अवयवों को, जिनके ऊपर हमारे शरीर का सम्पूर्ण विकास, स्वास्थ्य और सौन्दर्य निर्भर है, बलवान् व कार्यक्षम बनाना है। मांस-पेशियों को पुष्ट व पूर्ण विकसित करना अपेक्षाकृत कम महत्त्व का है। आन्तरिक अवयवों पर स्वास्थ्यप्रद प्रभाव हम केवल मांसपेशियों की क्रियाशीलता के द्वारा ही डाल सकते हैं। दूसरे शब्दों में इसी का नाम व्यायाम है। व्यायाम से मांसपेशियाँ किस प्रकार बलवती व सुगठित हो जाती हैं, इसे हम सरलता से जान सकते हैं।

यह कहा जा चुका है कि पेशियों में सिकुड़ने और फैलने का अद्भुत गुण विद्यमान है। पेशियाँ अपने इस गुण के द्वारा पूर्ण विकास कर पाती हैं। अर्थात् वे बलवती और पुष्ट हो जाती हैं। पेशियों को यह कार्य करने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है। यह शक्ति भोजन से प्राप्त होती है, जिसे रक्त उपस्थित करता है। रक्त ओषजन को भी फेफड़ों में ले जाकर प्रत्येक पेशी, कोष और तन्तु तक पहुँचाता है। शक्तिदायक पदार्थ ओषजन से मिलकर ताप में परिवर्तित हो जाते हैं। यही ताप शरीर को गरम रखता है, और शक्ति देता है। जिस प्रकार इन्जिन में कोयला जलकर (वायु की सहायता से) ताप में परिवर्तित होकर शक्ति का रूप धारण करता है, उसी प्रकार हमारे शरीर में भी शक्ति उत्पन्न करने की यह क्रिया होती है। इसके साथ ही पेशियाँ रक्त में से अपनी वृद्धि, पोषण और मरम्मत के लिए भी तत्त्व प्राप्तकरती हैं। अधिक शक्तिवर्धक और निर्माणकारी पदार्थों को लेकर रक्त पेशियों के पास उप-स्थित होता है। यदि पेशियाँ सुस्त पड़ी रहें, तब न उन्हें इतने खाद्य पदार्थों की आवश्यकता होगी और न रक्त उन्हें उनके पास लेकर पहुँचेगा। अतः निष्क्रीय व्यक्तियों की मांसपेशियाँ फुस्फुस और लुच-लुची हो जाती हैं। देखने में शरीर भोंड़ा और असम रूप मालूम पड़ता है। दूसरी तरफ व्यायामशील व्यक्ति की मांसपेशियाँ निरन्तर पोषण (रक्त-सञ्चार द्वारा) प्राप्त कर सुगठित और कार्यक्षम (शक्ति-शालिनी) हो जाती हैं।

इससे हम यह बात भी जान सकते हैं कि व्यायाम करने से पेशियों की पोषक तत्त्वों के लिए माँग बढ़ जाती है, जिसका नाम भूख है। इस माँग को रक्त उत्तम भोजन के पचे हुए अंश से पूरा करता है। अतः पौष्टिक, सुपच, संतुलित, रुचिकर भोजन ग्रहण करना चाहिये।

व्यायाम का प्रथम प्रभाव रक्त-संचार पर पड़ता है। वह तेजी से पोषक तत्त्व पहुँचाने लगता है। शक्ति उत्पन्न करने के कार्य में जो ज्वलन होता है, उससे कर्बनिकाम्ल, यूरिया और जल-कण आदि पैदा होते हैं, रक्त शीघ्रता से इन्हें भी बहा ले जाता है, जो क्रमशः फेफड़ों, वृक्कों और पसीने द्वारा बाहर निकाल दिये जाते हैं।

रक्त ओषजन को फेफड़ों की सहायता से प्राप्त करता है। अतः फेफड़ों को तेजी के साथ श्वाँस लेना पड़ता है और रक्त का शोधन करना पड़ता है। सामान्य अवस्था में श्वास-प्रश्वास १६-१७ बार प्रति मिनट चलता है। व्यायाम करते समय यह ८०—९० तक बढ़ जाता है। इस तेजी का फल यह होता है कि फेफड़ों की कार्य-शक्ति बढ़ जाती है, वे अधिक लचीले व शक्तिशाली हो जाते हैं।

इसी प्रकार रक्त को हृदय विश्राम-काल में ६०-७० बार प्रति मिनट फेंकता है। व्यायाम-काल में इसे १०० बार तक फेंकना पड़ता है। हृदय भी मांसपेशियों का एक अद्भुत यन्त्र है, अतः यह काम करने से उसकी शक्ति भी बढ़ जाती है। सशक्त हृदय निःसन्देह एक गौरव की वस्तु व दीर्घ-जीवन का प्रतीक है।

वृक्क रक्त-शोधन का कार्य करते हैं। व्यायाम के द्वारा रक्त-सञ्चार बढ़ने से रक्त वृक्कों में से अधिक मात्रा में गुजरेगा। फलतः वृक्क अपना कार्य तत्परता से करेंगे। तथा स्वयं भी कार्यक्षम होंगे, उनका उचित पोषण भी होगा।

व्यायाम करने से रक्त शुद्ध होता है, सम्पूर्ण अवयव पुष्ट होते हैं। उदर-पेशियाँ बलवती होंगी, इसलिए रक्त भोजन को भी भली प्रकार

पचा सकेगा। पाचक रसों को पैदा करने वाली ग्रन्थियाँ रक्त पर ही आश्रित हैं। उत्तम रक्त पर्याप्त मात्रा में मिलने पर वे भी अवश्य बलवती व स्वस्थ होंगी। पाचन-संस्थान पर मालिश होने तथा आंतों की लहरदार गति के होने आदि में भी व्यायाम का वाह्य प्रभाव पड़ता ही है।

बहुत से लोग भ्रान्तिवश यह विचार करने लगते हैं कि व्यायाम से बुद्धि कुण्ठित हो जाती है। यह बात इसी प्रकार उपहासास्पद है, जैसे कोई आजकल के ९० प्रतिशत कमजोर और निस्तेज विद्यार्थियों को देखकर कहने लगे कि पढ़ने से शरीर खराब हो जाता है। वास्तविक बात यह है कि एकांगी दौड़ लगाने से अर्धांग हो ही जाता है। यदि बुद्धि और शरीर दोनों के विकास के लिए समान ही रूप से प्रयत्न किया जायगा, तो शरीर और बुद्धि दोनों पूर्णता को प्राप्त होंगे, जो कि विद्यार्थी-जीवन का उद्देश्य है।

जो कोष बुद्धि-तत्त्व का निर्माण करते हैं, वे पेशियों से भिन्न हैं। अतः दिन में बौद्धिक कार्य करने के बाद सायंकाल या प्रातःकाल पेशियों से काम लिया जायगा तो ताजगी और स्वास्थ्य प्राप्त होगा। अर्थात् मस्तिष्क के कोषों को विश्राम मिलेगा, जिसकी उन्हें आवश्यकता थी।

हमने संक्षेप में यह देखा कि शरीर के सभी अंग एक-दूसरे के परम सहायक हैं, तथा व्यायाम करने से मांसपेशियाँ पुष्ट होती हैं। और हमने यह भी देखा कि किस प्रकार व्यायाम सभी आन्तरिक अवयवों पर स्वास्थ्यप्रद प्रभाव डालता है। इन बातों से यह परिणाम निकला कि व्यायाम ही हमारे पास एकमात्र ऐसा साधन है, जिसके द्वारा हम मांस-पेशियों को पूर्ण विकसित और आन्तरिक महत्त्वपूर्ण अवयवों को स्वस्थ बना सकते हैं।

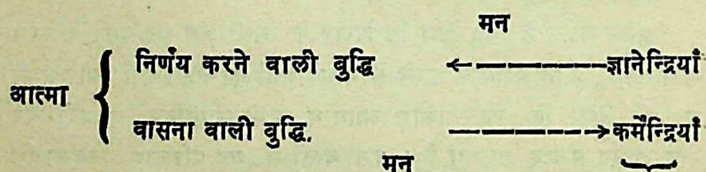
अतः यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि व्यायाम द्वारा ही हम क्रिया-शीलता, चुस्ती, बल, स्वास्थ्य और सौन्दर्य प्राप्त कर सकते हैं। सौन्दर्य

प्राप्त करने के सभी इच्छुक होते हैं, परन्तु कम लोगों को ज्ञात है कि सच्चा स्थायी सौन्दर्य व्यायामचर्या और प्राकृतिक रहन-सहन से ही प्राप्त होता है।

मन और शरीर

मन और शरीर के सम्बन्ध का विचार करने से पूर्व मन क्या है, इसे जान लेना आवश्यक है। हमारी बाह्य इन्द्रियों के दो विभाग हैं। एक ज्ञानेन्द्रियाँ दूसरी कर्मेन्द्रियाँ। ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा हम ज्ञान प्राप्त करते हैं। अर्थात् बाह्य पदार्थों का ज्ञानेन्द्रियों से संयोग होने पर मन—जिसे अन्तरिन्द्रिय कहा जाता है—उस इन्द्रिय और पदार्थ के संयोग से उत्पन्न ज्ञान को आत्मा तक पहुँचाता है। अन्दर की इन्द्रिय मन का उत्कृष्ट भाग 'बुद्धि' कहलाता है। इसका काम "निर्णय" करना है। मन से संयोग होने पर आत्मा बुद्धि द्वारा निर्णय करता है। इस निर्णय के पश्चात् बुद्धि में 'वासना' पैदा हो जाती है। इस वासना के आधार पर बुद्धि के निर्णय को कार्यरूप में परिणत कराने के लिये मन कर्मेन्द्रियों को प्रेरित करता है। और हम कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म करने में प्रवृत्त होते हैं।

निम्नलिखित सारिणी से यह बात और स्पष्ट हो जाती है।



अन्तरिन्द्रिय बाह्येन्द्रिय

प्रारम्भ में हमने "मन और शरीर" यह शीर्षक दिया है। यहाँ पर 'मन' से तात्पर्य सम्पूर्ण अन्तरिन्द्रिय से है। ऊँच-नीच का विचार कर निर्णय करने वाली बुद्धि है। गीता में इस बुद्धि को मन से भी अधिक

श्रेष्ठ बताया है। इसकी श्रेष्ठता इसी से सिद्ध है कि व्यक्ति के आचार-विचार और सम्पूर्ण चरित्र का अन्तिम कर्ता यह बुद्धि ही है।

यदि यह बुद्धि स्थिर, शान्त और सात्त्विक हो तो मनुष्य ठीक रास्ते का अवलम्बन कर सकता है। व्यायामचर्या की भाषा में हम इसी आशय को यों प्रकट कर सकते हैं कि 'स्वस्थ बुद्धि' आवश्यक है। मोटे शब्दों में इसे हम मानसिक स्वास्थ्य का ठीक होना कहेंगे। अतः स्वस्थ व्यक्ति की परिभाषा यह हो सकती है कि जिसका शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य ठीक हो। यह कहना अनुचित न होगा कि मानसिक स्वास्थ्य के बिना शारीरिक स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। मन की इस महत्ता को दृष्टि में रखकर पातञ्जल-योगशास्त्र का उपदेश किया गया है। अर्थात् कल्याण के लिए मन का निग्रह, स्थिरीकरण या उसे 'स्वस्थ' बनाना आवश्यक है।

यद्यपि शरीर का दर्जा मन या बुद्धि से कम है, तो भी शरीर मन के ऊपर भारी असर रखता है। यह बात सभी को मान्य है कि रुग्ण शरीर में स्वस्थ मन का निवास असम्भव है। मनोविज्ञान-वेत्ताओं का यह स्थिर सिद्धान्त है कि दुर्बल शरीर वाले कुरूप व्यक्तियों में 'अवसाद' की भावना का उदय उनके शरीर की हीनावस्था के कारण होता है। यदि उनका शारीरिक स्वास्थ्य ठीक हो जाय, तब उनके मन में से अवसाद की भावना (न्यूनगंड—छोटेपन की भावना) लुप्त हो जायगी।

इससे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि मानसिक रोगों को ठीक करने के लिए भी शरीर के स्वास्थ्य का उपयोग किया जा सकता है। अब प्रश्न यह हो सकता है कि मानसिक स्वास्थ्य और शारीरिक स्वास्थ्य में से प्रथम किसे ठीक किया जाय? इसका उत्तर यही है कि दोनों का सुधार साथ-साथ होगा, क्योंकि दोनों अन्योन्याश्रित हैं। हाँ, सूर्य के उदय और अस्त होने के नियम के समान स्थिर, नियमित व्यायाम करने के व्रत को ग्रहण करने से मानसिक बल बहुत बढ़ जायगा।

ब्रह्मचर्य

"जिस निर्विकार दशा का अनुभव हम मृत शरीर को स्पर्श करके करते हैं, उसीका अनुभव जब हम किसी सुन्दरी युवती का स्पर्श करके कर सकें, तभी हम ब्रह्मचारी हैं।" म० गान्धी।

एक बार किसी सरोवर में कुछ युवती सुन्दरियाँ स्नान कर रही थीं। वे स्वच्छन्दता से जल-क्रीड़ा में मग्न थीं। सोलह वर्ष के युवक शुक भगवान् विचरते हुए वहाँ आ पहुँचे। उनकी उपस्थिति से उनकी जल-क्रीड़ा में कोई बाधा नहीं हुई। क्योंकि शुक भगवान् सांसारिक बातों से ऊपर थे। कुछ समय बाद वृद्ध व्यास भगवान् पधारे। स्त्रियों ने अपनी लज्जा ढंकने का प्रबन्ध किया। इस पर व्यास ने आक्षेप किया, और पूछा कि तुमने एक युवक के सामने अपना स्नान पूर्ववत् जारी रखा तथा मुझ जैसे वृद्ध से लज्जा बचाने के लिए इतनी आतुरता क्यों दिखाई ?

युवतियों ने ब्रह्मचर्य का रहस्य समझाते हुए कहा कि आपके "मन को स्त्री-पुरुष का ज्ञान है। पर शुक के मन में स्त्री-पुरुष में किसी प्रकार का भेद नहीं है। मन के पवित्र होने पर बाह्य आचार गौण हो जाता है।" इस कथा से यह पता चलता है कि ब्रह्मचर्य का आधार है पवित्र मन।

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।

वीर्य-नाश प्रत्यक्ष मृत्यु है। ब्रह्मचर्य जीवन का नाम है। ब्रह्मचर्य के महाव्रत को पालन करने से देवताओं ने मृत्यु को जीता है। मृत्यु को जीतने का क्या तात्पर्य है ? आजकल ब्रह्मचर्य के अभाव में हम लोग प्रतिदिन मृत्यु को प्राप्त होते हैं। हमारी साँस तो चलती है, पर इतने भर से हम जीवित नहीं कहे जा सकते। जीवन का लक्षण ही दूसरा है।

किस काम की नदी वह जिसमें नहीं रवानी।
जो जोश ही न हो तो किस काम की जवानी॥

बल, वीर्य, पौरुष, तेज और उत्साह-उमंग के बिना भी कोई जीवन हो सकता है ? यह मुर्दे की जिन्दगी है, और ब्रह्मचर्य-हीन व्यक्ति "जिंदा मुर्दे" हैं। इन जिन्दा-मुर्दों को देखने के लिये हमें जादूगरों के तमाशा-गृहों में जाने की आवश्यकता नहीं। पाश्चात्य सभ्यता की कृपा से जिन्दा मुर्दे आज हर जगह नजर आ सकते हैं।

जिन्दगी के रास्ते में ब्रह्मचर्य प्रकाश-स्तम्भ है। इसका अवलम्बन हमें करना पड़ेगा। क्योंकि हम जिन्दगी चाहते हैं। व्यायाम का व्रत लेनेवालों को ब्रह्मचर्य का व्रत लेना पड़ेगा। अन्यथा बिना ब्रह्मचर्य के व्यायाम ऊसर भूमि में बीज बोने के समान है : परिश्रम करोगे, पर फल कुछ न होगा। एक व्यायाम के व्रत से सम्पूर्ण जीवन प्रभावित होगा।

"एक साधै सब सधै, सब साधै सब जाय।"

परन्तु आम लोगों की धारणा यह है कि ब्रह्मचर्य-व्रत पालना लगभग असम्भव है, तब क्या करें ? अनुभवी लोगों का कहना है कि "ब्रह्मचर्य स्वाभाविक चीज़ है, अब्रह्मचर्य असम्भव है।" जरा पालन करके देखिए, क्या दिव्य आनन्द प्राप्त होता है ! यदि हमारे अन्दर इच्छा पैदा हो जाय, तब हम अवश्य ही इस महाव्रत को सरलता से निभा सकेंगे। इच्छा करना हमारा काम है। अतः ईमानदारी के साथ ब्रह्मचर्य-पालन की इच्छा जागृत करनी चाहिए।

हवाई जहाज के निर्माता से एक व्यक्ति ने पूछा—"यह गिर क्यों नहीं पड़ता ?" उसने बड़ी आसानी के साथ उत्तर दिया—"क्योंकि इसे गिरने का समय ही नहीं मिलता, यदि समय मिलता तो अवश्य गिर पड़े।"

ऋषि दयानन्द से एक सज्जन ने प्रश्न किया—"ऋषिवर ! क्या आपको कामदेव कभी आकर नहीं सताता ?" ऋषि ने उसी सरलता से उत्तर दिया—"मेरे पास इतना समय नहीं कि कामदेव आकर मुझसे उलझ सके।" अर्थात् खाली और बेकार व्यक्तियों को कामदेव सताता

है। उसका प्रथम आक्रमण "मनीराम" पर होता है। मनीराम लालच में आकर किले के फाटक खोल देते हैं। शत्रु नगरी पर कब्जा जमा लेता है।

अतः आज गद्दार किलेदार मनीराम को बर्खास्त कर दीजिए। पवित्र मन को सेवा में रखिए। किला शत्रु से सुरक्षित रहेगा। आप ब्रह्मचारी बन जायेंगे। अथवा "ज़िन्दगी" व्यतीत करने लगेंगे।

मनीराम एक फौजी अफसर है। चाहे युद्ध के दिन हों या शान्ति-काल, एक फौजी को अपनी दैनिक "परेड" करनी पड़ेगी। महर्षि पतञ्जलि ने मनीराम के लिए उत्तम और सुव्यवस्थित 'परेड' का विधान किया है।

अभ्यास-वैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।। समाधिपाद ।।

अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन ठीक रास्ते पर आता है। यही उपाय श्रीकृष्ण ने गीता में बताया है।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।। गीता ।।

गृहस्थ व्यक्ति भी संयमपूर्वक ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत कर सकते हैं। संतानोत्पत्ति के पुण्यकार्य के लिये ही स्त्री-प्रसंग की आज्ञा है:

ऋतावृतौ स्वदारेषु संगतिर्या विधानतः।
ब्रह्मचर्यं तदेवोक्तं गृहस्थाश्रमवासिनाम् ।। याज्ञवल्क्य ।।

महात्मा गान्धी एक स्थान पर पति-पत्नी का आदर्श सम्बन्ध बताते हुए लिखते हैं—"यदि आप विवाहित हैं तो याद रखिए कि आपकी स्त्री आपकी मित्र, सहचरी और सहयोगिनी है, भोग-विलास का साधन नहीं।" भोग के लिए संभोग करना सर्वथा त्याज्य है, क्योंकि गांधीजी के कथन के अनुसार "भारत में अथवा संसार में यदि नपुंसक बालक चींटियों की तरह बढ़ जायें तो उससे भारत या संसार का क्या होगा?"

संयम की महत्ता बहुत अधिक है और प्रत्येक व्यक्ति, जो अपनी आन्तरिक वाणी को सुनता है; संयम का कायल है। ऐसी अवस्था में

हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य यह है कि हम वस्तुत: ईमानदारी के साथ ब्रह्मचर्य-पालन की शपथ ग्रहण करें। जिस काम को करने की हमारी इच्छा होगी, उसे हम अवश्य कर सकेंगे। यहाँ पर हम अनुभवी महानुभावों द्वारा बताए गए कतिपय ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन के लिए उपयोगी नियम देते हैं।

१. ब्रह्मचर्य-पालन की ईमानदारी के साथ प्रतिज्ञा करो।

२. जैसा कि पहले बताया गया है, इस महाव्रत का मूल 'मन' है। मन के पवित्र रहने पर ब्रह्मचर्य-पालन स्वाभाविक है। अर्थात् मन में कभी भी क्षण-मात्र के लिए तिल-मात्र गन्दे विचार मत आने दो।

३. मन को पवित्र बनाये रखने के लिए अपने काम-काज को समय पर करते रहो, जिससे मन उसमें लगा रहे। बेकार मत रहो।

४. उत्तम पुस्तकों का स्वाध्याय कीजिए, पवित्र साधु-चरित्र व्यक्तियों के साथ ही उठिए-बैठिए।

५. अपने जीवन का उद्देश्य निर्धारित कर उसी में शक्ति केन्द्रित कीजिए।

कुछ आवश्यक बातें

व्यायाम के सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ सूत्रात्मक नियम दिये जाते हैं। इनको ध्यान में रखना आवश्यक है। व्यायाम द्वारा उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए दृढ़ आत्म-संयम, अडिग धैर्य और दीर्घकालीन तत्परता की आवश्यकता होती है। जिन लोगों के चरित्र में ये गुण नहीं हैं, वे कभी भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। श्रद्धापूर्वक किसी कार्य में लगे रहने से ही सफलता मिल सकती है। आँधी-पानी और जीवन के ऊँच-नीच में भी जिनका व्रत भंग नहीं होता, वे ही पुरुष-सिंह कुछ कर पाते हैं। किसी कवि ने लगन का महत्त्व बताया है।

मिटा दे अपनी हस्ती को जो चाहे मर्तबा होना।
कि दाना खाक में मिलकर गुलोगुल्जार होता है॥

१. व्यायामचर्या एक विज्ञान का रूप धारण कर चुकी है। अतः व्यायाम को समझने की आवश्यकता है। इसके लिए शरीर-रचना तथा क्रिया-विज्ञान आदि के सम्यक् अध्ययन की आवश्यकता है। व्यायाम के सिद्धान्तों को समझकर ही उन्हें काम में लाना चाहिये। ऊटपटांग अव्यवस्थित ढङ्ग से उलटा-सीधा कुछ कर बैठना व्यायाम नहीं है। इससे बहुत हानि हो सकती है।

२. अधिक व्यायाम करने से व्यायाम बिलकुल न करना अच्छा है। जब मांसपेशियों में अधिक रक्त व्यायाम के समय भेजा जाता है तो हृदय को अधिक कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार हृदय भी दूसरी पेशियों के समान व्यायाम करने से शक्तिशाली होता है, जब तक कि उसके ऊपर अत्यधिक अनुचित काम का भार न पड़े। ज्यों-ज्यों हृदय की कार्य-क्षमता बढ़ती जाय, त्यों-त्यों व्यायाम बढ़ाना चाहिए। एकदम व्यायाम बढ़ा देने से हृदय पर विनाशक प्रभाव पड़ता है। अतः व्यायाम को इतने धीरे-धीरे बढ़ाओ, जितनी सूक्ष्मता से प्रकृति हमारे शरीर को बढ़ाती है। अधिक व्यायाम कभी भी न करो।

३. अधिक व्यायाम करने वाले व्यायाम को जारी नहीं रख सकते; क्योंकि वे क्षीण हो जायेंगे। वे उस खरगोश की तरह होते हैं, जो एकरस स्थिरता से चलनेवाले कछुए से हार गया था। समय से पूर्व फल कभी नहीं पकता। इसी तरह एक ही दिन में इकट्ठे व्यायाम कर डालने से शीघ्र उन्नति नहीं हो सकती।

४. व्यायाम को आनन्ददायक काम समझिये। विश्वास रखिये, उचित ढङ्ग से किया गया व्यायाम निःसन्देह लाभप्रद होगा।

५. सप्ताह में छः दिन नियमित नियत समय पर व्यायाम करो।

६. व्यायाम कितनी देर करना चाहिये, यह बात करनेवाले की शक्ति पर निर्भर है। निर्बल व्यक्तियों के लिए २० मिनट काफी है। साधारण व्यक्ति ३०-३५ मिनट तक कर सकते हैं। बड़े-बड़े पहलवान व्यायाम में २-२ घण्टे खर्च करते हैं।

७. सदा स्वच्छ वायु में व्यायाम करो। सबसे अच्छा स्थान—यदि ऋतु अनुकूल है तो—खुला मैदान है। अधिक शीत या वर्षा होने पर खुले, हवादार स्वच्छ कमरे में व्यायाम करना चाहिये।

८. कसे वस्त्रों को पहनकर व्यायाम मत करो। अनुकूल ऋतु होने पर केवल ढीला जांघिया (जिसके भीतर लंगोट हो) पहन कर व्यायाम करो : शीतकाल में अवस्थानुसार पतली या मोटी बनियान धारण कर व्यायाम करना चाहिये।

९. व्याथाय का समय प्रातः सूर्योदय के साथ-साथ सर्वोत्तम है। या सायंकाल ५ बजे से ६ बजे तक का।

१०. व्यायाम से पूर्व गला, मुख, दांत, आंख और हाथ-पैर जल से साफ कर लेने चाहिए। ऐसा करने से व्यायाम में रुचि पैदा होती है, तथा स्फूर्ति बनी रहती है।

११. भूखे, थके-मांदे, चिन्तित व प्यासे होने पर व्यायाम मत करो।

१२. व्यायाम थोड़ा करो, रोज करो, पर अवश्य करो। आज का काम कल पर मत छोड़ो। आलस्यवश व्यायाम न करने की इच्छा को मन में स्थान न दो।

१३. हृदय की गति का तथा श्वास-क्रिया का घनिष्ट तथा आवश्यक सम्बन्ध है। हृदय की योग्यता पर यह निर्भर है कि वह शरीर में आवश्यकतानुसार फेफड़ों में से गुजारता हुआ रक्त को भेजता रहे। हृदय और फेफड़ों की क्रिया व्यायाम के समय यदि सामञ्जस्यतापूर्वक नहीं होती तो रक्त और ओषजन की आमद में विघ्न पैदा हो जायगा। वक्ष और

उदर-पेशियों की स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास की क्रिया हृदय के एक भाग से दूसरे भाग में रक्त पहुँचाने में परम सहायक है। अतः व्यायाम-काल में वक्ष को फुलाकर श्वाँस रोक लेना अच्छा नहीं है। इससे श्वास-कर्म तथा रक्त-सञ्चार का सामञ्जस्य भी बिगड़ जाता है।

१४. व्यायाम जल्दी-जल्दी मत करो। ठीक प्रकार से इच्छा-शक्ति पूर्वक करना चाहिये।

१५. व्यायाम के समय मित्रों व दर्शकों को पास मत आने दो। एकान्त में व्यायाम करना अच्छा है।

१६. व्यायाम के लिए एक अच्छा आदमकद शीशा अत्यन्त उपयोगी है। इसके आगे व्यायाम करने से, व्यायाम करने में जो त्रुटियाँ रह जाती हैं, वे मालूम हो जाती हैं। चित्त भी प्रसन्न रहता है।

१७. व्यायाम सहसा तेजी से प्रारम्भ नहीं करना चाहिये। शरीर में गर्मी लाने के लिये प्रारम्भिक अभ्यास सरल होना चाहिये।

१८. शरीर को आनुपातिक दृष्टि से बनाना है। अतः कमजोर या अविकसित शरीर के भागों की ओर तबतक अधिक ध्यान रहना चाहिए, जब तक कि वे उचित अवस्था में न आ जायें। अंगों की समरूपता में सौन्दर्य है। अतः बायें हाथ से अभ्यास पहले करना चाहिए। बाद को दायें हाथ से। यदि बायें हाथ या अन्य क्षीण भाग पर विशेष ध्यान दिया न जायगा तो वह क्षीण ही रह जायगा।

१९. दो अभ्यासों के बीच इतना अधिक विश्राम मत करो कि गर्मी जाती रहे। साधारण विश्राम लेकर अगला अभ्यास शुरू करना चाहिए।

२०. हर अभ्यास के पश्चात् थोड़ा विश्राम करना अच्छा है। इससे रक्त-संचार द्वारा व्यायाम के कारण पैदा हुए दूषित पदार्थ बहकर साफ हो जाते हैं।

२१. कठिन अभ्यासों से घबराइये मत। धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाने से सभी कठिन अभ्यास सरल हो जायँगे। पूरी लगन के साथ कठिन कार्यों पर विजय प्राप्त करने की आदत बनाइए। शक्ति और नियन्त्रण प्राप्त होने पर अवश्य ही कठिन अभ्यास होने लगेंगे।

२२. जिस प्रकार व्यक्ति जन्म से मृत्यु पर्यन्त भोजन करता है या स्वाध्याय करता है, उसी प्रकार व्यायाम को भी सदा निभाया जा सकता है। "व्यायाम करने से भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ" इस प्रकार की निराशा मन में मत आने दो। विश्वास रखो, तुम्हारा अल्प प्रयत्न भी अवश्य फलदायक होगा।

२३. व्यायाम करने के बाद या मध्य में प्यास लगे तो यह समझ लेना चाहिए कि हमने आज पानी कम पिया था। अतः उषःपान करने तथा दोपहर के भोजन के तीन घण्टे बाद यथेच्छ जल पीने से व्यायाम में प्यास नहीं लगेगी। व्यायाम के बाद या मध्म में पानी नहीं पीना चाहिए।

२४. दुर्व्यसनों से परहेज कीजिए।

२५. व्यायाम के पश्चात् विश्राम करना चाहिए। जब हृदय और श्वांस की गति समता धारण कर ले, स्नान कर डालो। स्नान में त्वचा की सफाई अच्छी तरह करो।

२६. व्यायाम और स्नान के बाद कोई तरल पौष्टिक चीज़ खानी चाहिए। भोजन करना उचित नहीं। दूध सर्वोत्तम है। व्यायाम के पश्चात् गरम किया हुआ या ताजा कच्चा धारोष्ण दुग्ध लिया जा सकता है। अनुभव से ज्ञात हुआ है कि गरम उबले हुए दूध की अपेक्षा ताजा स्वच्छ धारोष्ण दुग्ध अधिक शान्तिदायक व सुपच होता है। गरम किया हुआ दूध पीने से कई बार प्यास लगती है और भूख भी रुक जाती है। परन्तु धारोष्ण दुग्ध के लिए यह बात अत्यावश्यक है कि वह पूर्णतया

स्वच्छता के साथ स्वच्छ स्वस्थ गौ का निकाला हुआ हो और तत्काल पी लिया जाय। धारोष्ण कच्चे दूध से शरीर तेजी के साथ बढ़ता है। ग्रीष्म ऋतु में व्यायाम के बाद दही को बिलोकर गाढ़ा बनाया गया मट्ठा उत्तम है। इसमें से मक्खन नहीं निकालना चाहिए। मिश्री व इलायची मिलाना लाभदायक है। इसके अतिरिक्त हमारे देश में बादाम घोटकर पीने का प्रचार पहलवान-समाज में खूब है। यह भी एक उत्तम पौष्टिक पेय है। इसका सेवन निःसन्देह लाभकर है। बादाम फोड़कर रात्रि में ही पानी में भिगो देना चाहिए। सवेरे उनका लाल-पतला छिलका छीलकर कूंडी में घोटो। बादाम जितना अधिक घोटा जायगा, उतना ही अधिक लाभकर होगा। शुरू में १० बादामों से अधिक नहीं लेना चाहिए। सामान्य व्यक्ति धीरे-धीरे लगभग बीस बादाम घोटकर प्रति दिन पी सकता है। कठिन व्यायाम करने वाले व्यक्ति ५०-५० बादाम पीते हैं। कालीमिर्च, गुलाब के फूल, छोटी इलायची और खरबूजे के बीज भी आवश्यकतानुसार परिमाण में बादामों के साथ घोटे जा सकते हैं। अच्छी प्रकार पिस जाने पर इनको जल में या एक गिलास दूध में छानना चाहिए। शीत-ऋतु में दूध और बादाम अति पौष्टिक हैं। अधिक बादाम-सेवन हानिकर है। अतः सावधानी से उचित मात्रा में लेना चाहिए।

बहुत से पहलवान मलेरिया से बचने के लिए वर्षाऋतु में नीम की कोंपलों को घोट, पानी में छान, छटाँक-डेढ़-छटाँक प्रति दिन पीते हैं। इस कारण वे मलेरिया से बचे रहते हैं।

सर्वोत्तम व्यायाम-पद्धति

आजकल अनेक व्यायाम-पद्धतियाँ प्रचलित हो रही हैं। दृष्टिकोण के अन्तर के कारण सभी के पक्ष-विपक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। व्यायाम के किसी क्षेत्र में कमाल पैदा करने वाले सिद्ध पुरुष अपनी-अपनी रुचि के व्यायाम को मुख्यता देते हैं। परन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से हम एक सर्व-सम्मत पद्धति के आवश्यक गुणों की खोज कर सकते हैं।

ये गुण जिस व्यायाम-पद्धति में पाये जायँ, वह उत्तम पद्धति कही जा सकती है। निम्नलिखित गुण किसी भी पद्धति को आदर्श बना सकते हैं:—

१. शरीर की प्रत्येक मांस-पेशी के लिए उचित व्यायाम की आवश्यकता है। अतः व्यायाम की प्रथम विशेषता यह होनी चाहिए कि कोई भी अंग व्यायाम से छूटने न पाये। तथा किन्हीं अंगों को आवश्यकता से अधिक काम भी न करना पड़े। प्रसंगवश यह कह देना उपयुक्त है कि डम्बलों में कलाई और अग्रबाहु की पेशियों पर अधिक जोर आता है; और चूंकि प्रत्येक अभ्यास में इन्हें काम करना पड़ता है, अतः इसमें यह दोष है।

२. मांस-पेशियों के कार्य की अवस्था के तीन विभाग किये गये हैं। (१) संकोचात्मक, (२) प्रसारात्मक और (३) अवस्थित्यात्मक। आजकल मनुष्य-जीवन की दिनचर्या बड़ी जटिल हो गयी है; अतः अधिकांश काम-काजी लोगों के शरीर की कुछ निश्चित पेशियों व निश्चित आन्तरिक अवयवों को निरन्तर दीर्घकाल तक एक स्थिति में रहना पड़ता है। दूसरी पेशियाँ उपेक्षित पड़ी रहती हैं। इससे कुछ पेशियाँ खिचकर लम्बी, कुछ छोटी और कुछ क्षीण हो जाती हैं। छ वर्ष की आयु से लेकर २२ वर्ष की आयु तक प्रति दिन ५-६ घण्टे स्कूल में एक ही प्रकार से बैठने वाले विद्यार्थियों के शरीर पर पड़े दुष्प्रभाव को देखा जा सकता है। उनके शरीर का ढाँचा ही बिगड़ जाता है। फलतः शरीर पूर्ण विकास को प्राप्त नहीं होता और जन्म भर के लिए बेडौल हो जाता है।

अतः व्यायाम-पद्धति के अन्दर इस प्रकार की खराबियों को दूर करने के लिए पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए। इस को सुधारने की जिम्मेवारी पूर्ण रीति से व्यायाम-शिक्षक की है। वैद्य और डाक्टर इसके लिए कुछ नहीं कर सकेंगे।

३. उत्तम व्यायाम-पद्धति की तीसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि सरलतम अभ्यासों से प्रारम्भ कर धीरे-धीरे शक्ति के अनुसार कठिन अभ्यासों की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति उसमें हो। तेजी के साथ अथवा एकदम कठिन कामों को करने से अवश्य ही हानि होती है। प्रायः यह देखा गया है कि किसी व्यक्ति की मांस-पेशियाँ इस योग्य होती हैं कि वह कोई कठिन अभ्यास जोर लगाकर कर डाले। परन्तु व्यायाम की आदत न होने से, जोर लगाने की इस विशेष परिस्थिति में हृदय को अपना काम करने का अभ्यास नहीं होता है। फल यह होता है कि जोश में आकर कठिन काम तो वह आदमी कर जाता है, पर हृदय पर ऐसा कुप्रभाव पड़ जाता है; जो हृदय के किसी गंभीर रोग की जड़ होता है। अतः सर्वदा व्यायाम के सरल अभ्यासों के द्वारा पेशियाँ, हृदय और फेफड़ों की शक्ति बढ़ाने का यत्न करना चाहिये।

४. चौथी विशेषता यह होनी चाहिये कि कोई भी काम-काजी व्यक्ति अपनी जीविका के लिए धन्धे करते हुए उस सरल व्यायाम-पद्धति को निभा सके। अधिक-से-अधिक उसमें आधा घण्टा लगे। साधन संक्षिप्त हों और स्थान भी सरलता से उसके लिये प्राप्त किया जा सके।

जिस व्यायाम-पद्धति का अवलम्बन इस छोटी पुस्तक में किया गया है, वह वैज्ञानिक है, सरल है, खतरे से रहित है, खर्चीली नहीं है और सर्वसम्मत है। इसमें ऊपर कहे गये गुण विद्यमान हैं। इसका कोई अभ्यास ऐसा नहीं, जिसे लाखों आदमियों ने आज दिन तक न आजमाया हो। सब से बड़ी विशेषता इस पद्धति की यह है कि इन दण्ड और बैठकों से ही व्यक्ति बड़ा से बड़ा पहलवान् भी हो सकता है तथा सामान्य व्यक्ति भी अपने स्वास्थ्य को कायम रखने के लिये इन्हें उपयोग में ला सकता है।

इस व्यायाम-पद्धति के सम्बन्ध में अपने अनुभव में आयी हुई बात भी स्पष्ट कर देनी चाहिये। मेरे पास व्यायाम करने वाले विद्यार्थियों के दो दल प्रायः सभी जगह रहे हैं। एक दल विदेशी और देशी उपकरणों पर कठिन शारीरिक अभ्यासों को प्रति दिन करने वालों का और दूसरा दल ऐसा रहा, जो एक दिन इस व्यायाम-पद्धति के अनुसार व्यायाम करता था, दूसरे दिन उपकरणों पर अभ्यास करता था। परिणाम में दूसरे दल के विद्यार्थियों ने कुछ कमजोर होने पर भी प्रथम दल की अपेक्षा शीघ्र ही अधिक उन्नति कर दिखलाई। इसका श्रेय अपनी इस सरल, सुव्यवस्थित, वैज्ञानिक और नियमित व्यायाम-पद्धति को हीहै।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि कछुये की चाल की तरह मन्द, पर स्थिर गति और मधुमक्खी की तरह लगन से व्यायाम करने वाले व्यक्ति निश्चित रूप से लाभ प्राप्त करेंगे।

३

सौन्दर्य की व्याख्या

सौन्दर्य के प्रति मनुष्य का स्वाभाविक आकर्षण है। प्रत्येक व्यक्ति सौन्दर्य चाहता है। "सत्यं शिवं सुन्दरम्" की कल्पना हमारी अन्तर की कामना है। इसलिए मनुष्य स्वभावतः अपने सम्पर्क में आने वाली प्रत्येक वस्तु को सुन्दर चाहता है। इसी इच्छा के परिणामस्वरूप मनुष्य छोटी-से-छोटी वस्तु को उत्तरोत्तर सुन्दर बनाता चला जाता है। बाजार में मिलने वाली रातदिन के काम-काज की वस्तुओं को ही ले लीजिये। जो नमूना अधिक सुन्दर होता है, वही टिक पाता है। फिर उससे भी अधिक सुन्दर नमूना प्रस्तुत किया जाता है। इस संघर्ष में सौन्दर्य की वृद्धि होती चली जाती है। एक जैसी वस्तुओं को व्यक्ति सुन्दर सजी हुई दूकान से लेना ही पसन्द करेगा। अच्छी पैकिंग की वस्तु के लिये हम ज्यादा दाम देने के लिए तैयार हो जाते हैं। यह सब क्यों ? केवल इसीलिये न कि हम सौन्दर्य से प्रेम करते हैं, अपितु सुन्दर वस्तु को प्राप्त कर प्रसन्न होते हैं।

हमारा शरीर सबसे अधिक अपना है। यदि हम इसे सुन्दर पा जाते हैं, तो हमारे अन्दर आह्लाद का समुद्र हिलोरें मारने लगता है। जो वस्तु इतनी अधिक घनिष्टता से अपनी है, उसके सौन्दर्य की कामना क्यों न की जाय ? इस इच्छा की पूर्ति के लिये सुन्दर-से-सुन्दर कपड़ों का आविष्कार किया जाता है। नये-नये फैशनों की खोज होती रहती है। होशियार दर्जी का इसीलिए महत्त्व है। समझा यह जाता है कि दर्जी और नाई उस काम को पूरा कर सकते हैं, जो विधाता के बनाते समय रह गई थी। पाउडर, क्रीम आदि सौन्दर्य-प्रसाधन का कितना अधिक बोलबाला है ! इन सब वस्तुओं का अपने स्थान पर महत्त्व अवश्य है;

क्योंकि ये हमारी सौन्दर्य की भावना को तृप्त करने में सहायक हैं। परन्तु इससे भी अधिक जिस चीज की आवश्यकता है, वह है व्यायाम।

सुन्दर वस्त्रों में पैसा खर्च किया जाता है। कंघी कर बालों को बनाने में मेहनत की जाती है। प्रातः सायं शीशे के आगे खड़े होकर देखभाल करने में समय लगाया जाता है। यह सब होता है। परन्तु सौन्दर्य के सर्वप्रधान और सच्चे साधन—व्यायामचर्या—की ओर हमारे देश में लोगों का ध्यान कम है। बलवान् हृष्ट-पुष्ट शरीर सम्भवतः सबसे अधिक सुन्दर है। बल ही शरीर का सर्वोपरि आभूषण है। सुदृढ़, सुगठित शरीर की कामना किसे नहीं ? क्योंकि पौरुष का निवास-स्थल बलिष्ठ तथा सधा हुआ शरीर ही है।

भिन्न-भिन्न प्रकार के अनन्त सुन्दर शरीर दृष्टिगोचर होते हैं। सभी सुन्दर हैं। छोटे-बड़े और मझोले कद सभी सौन्दर्य में प्रस्फुटित होकर मन को हर्षाते हैं। इसलिए 'सौन्दर्य के लिए छोटे-बड़े की कोई कैद' नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति व्यायाम कर अपने शरीर को सुन्दर, बलिष्ठ बना सकता है। सौन्दर्य का रहस्य अनुपाततः, विकसित शरीर में है। जिस शरीर के सम्पूर्ण अवयवों का विकास जिस प्रकार और जितना होना चाहिये, उतना हुआ है, वह सुन्दर है। बेडौल शरीर भद्दा मालूम होता है। शरीर की बेडौलता दर्जी या नाई दूर नहीं कर सकता। व्यायाम अवश्य ही शरीर को अनुपात में विकसित करने का कार्य करता है। बहुत से लोग व्यायाम के द्वारा मोटा होना चाहते हैं। उनकी यह आशा निर्मूल है। स्थूलता अच्छे भोजन और आराम के जीवन से प्राप्त होती है। व्यायाम तो छाँटने का काम करता है, तथा आवश्यकतानुसार आनुपातिक स्थूलता प्रदान करता है। व्यायाम शरीर को ढालने का सुन्दर साँचा है। अतः व्यायाम से शरीर को अनुपाततः विकसित कर सच्चा सौन्दर्य प्राप्त किया जा सकता है। यह खयाल, कि मोटा हो जाने से शरीर सुन्दर हो जाता है, गलत है। अनुपाततः विकसित छोटे कद का शरीर अधिक भला प्रतीत

होता है। आजकल अत्यधिक मांसल शरीर की इतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी की सधे हुए नियन्त्रित शरीर की।

शरीर के सौन्दर्य के लिये 'आनुपातिक विकास' के अतिरिक्त एक और चीज की भी आवश्यकता है। वह है शरीर की उचित अवस्थिति (Proper Cariage) इसका मतलब यह है कि शरीर कहीं झुका, निकला हुआ या कुबड़ा तो नहीं है। आगे झुकी हुई छाती या पीछे को गिरते हुए से अंग, ये सब बातें बड़ी भद्दी मालूम होती हैं। इस तरह शरीर का ढांचा बिगड़ने के दो कारण हैं। प्रथम तो शरीर की उचित अवस्थिति बनानेवाली मांस-पेशियाँ हैं। यदि व्यायाम के अभाव के कारण ये मांस-पेशियाँ शिथिल पड़ गई हैं, तब शरीर को वे ठीक सीधी अवस्था में स्थित नहीं रख सकती हैं। दूसरा कारण दो उर्वस्थियों के मुण्ड पर श्रोणिचक्र (Pelvo) के आगे या पीछे की ओर झुककर रखा हुआ होना होता है। यदि श्रोणिचक्र आगे की ओर झुका है तो मेरुदण्ड भी आगे की ओर भागेगा। इसके संतुलन के लिए पृष्ठ का ऊपर का भाग पीछे की ओर हो जायगा। जिससे कटि-प्रदेश अत्यधिक भीतर घुस जायगा। इस दोष को Hollow Back कहते हैं। श्रोणिचक्र यदि पीछे की ओर झुक जाय तो संतुलन करने के लिए पीठ के ऊपर के भाग को आगे झुकना पड़ता है इस दोष को Round Back या कुबड़ापन कहते हैं।

यदि श्रोणिचक्र उर्वस्थियों के मुण्डों पर ठीक सीधा रखा है। और मांस-पेशियाँ भी समर्थ हैं तो शरीर की अवस्थिति ठीक होगी और उदर व वक्षगुहा में स्थित सभी अंग सुविधा से अपना अपना काम करते रहेंगे। शरीर सुन्दर व स्वस्थ रहेगा।

श्रोणितचक्र का आगे पीछे झुकना Hastring Muscles पर आश्रित है। इनके शिथिल होने से श्रोणिचक्र आगे की ओर झुक जायगा तथा इनके अधिक तने हुए होने से पीछे की ओर झुक जायगा। यदि नियमित रूप से पैरों का व्यायाम किया जाय, तब Hamstring Mus-

cles लचीली और सुदृढ़ रहेंगी। इसके लिए इस पुस्तक में बैठकों का व्यायाम दिया गया है। इस दृष्टि से बैठकों का महत्त्व निःसन्देह अत्यधिक है। नई उमर के विद्यार्थियों या लड़कों में शरीर की अवस्थिति-सम्बन्धी ये दोष—कुबड़ापन या खोखली कमर—हों तो ठीक प्रकार से व्यायाम करवाने से ठीक हो सकते हैं। इस प्रकार उनका सौन्दर्य बढ़ेगा तथा स्वास्थ्य ठीक रहेगा।

सभी प्राणी अपनी शारीरिक परिधि में सीमित हैं। मनुष्य-शरीर की जो विभिन्नताएँ पायी जाती हैं, वे एक निश्चित सीमा में है। सामान्यतः पुरुष की ऊँचाई ५ फिट ८ इञ्च मानी जाती है। स्त्री की ५ फिट ५ इञ्च। सबसे छोटा वामन १८ इञ्च और दैत्य ९ फिट आध इञ्च का नापा गया है। भारतीय पहलवानों में कीकड़सिंह दानवाकार माना जाता है। इसका सीना ८० इञ्च था। सामान्य वयस्क पुरुष का भार १ मन ३५ सेर, स्त्री का भार १ मन ३० सेर माना गया है। जान्पर और जन्किसन की मृत्यु क्रमशः १५२ और १६९ वर्ष में हुई थी।

प्रत्येक व्यक्ति अपने ढाँचे में स्वास्थ्यप्रद नियमों के पालन द्वारा पूर्ण विकास प्राप्त कर सकता है। चौड़ी हड्डी व बड़े ढाँचे के व्यक्ति का शरीर छोटे ढाँचे के व्यक्ति की अपेक्षा अधिक दृढ़ बन सकता है। वंश का प्रभाव मनुष्य के शरीर, स्वभाव और बुद्धि पर अवश्य पड़ता है। हृष्ट-पुष्ट माता-पिता की सन्तान अधिक हृष्ट-पुष्ट होगी।

स्थूल और पतले शरीर के व्यक्तियों में उनकी रचना को दृष्टि में रखते हुए पर्याप्त भिन्नता पायी जाती है। जिसका प्रभाव उनकी आयु, भार, शारीरिक क्षमता और रोग-प्रतिरोध-शक्ति पर पड़ता है। स्थूल व्यक्ति के फुपफुस अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। फलतः भोजन द्वारा प्राप्त कार्बोज की शर्करा के ज्वलन के लिए पर्याप्त ओषजन नहीं मिल पाती और यह शर्करा वसा रूप में परिणत होकर शरीर में जमा होती रहती है। दुर्बल गात वाले व्यक्ति के फेफड़े बड़े होते हैं, जो सामान्य श्वसन-

क्रिया में पूरी तरह न वायुपूरित होते हैं, न रिक्त ही। अतः क्षीणकाय व्यक्ति शीघ्रता से क्षय के कीटाणुओं के शिकार हो जाते हैं। पतले व्यक्तियों का आमाशय लम्बा व लटकने वाला होता है। इस कारण ये भोजन के बाद भारीपन का अनुभव करते हैं। वायु-प्रकोप भी हो जाता है। स्थूल व्यक्तियों का आमाशय छोटा व उच्चस्थित होता है। अतः ये भोजनोपरान्त सुविधा का अनुभव करते हैं। परन्तु स्थूलकाय व्यक्तियों को मधुमेह शीघ्रता से हो जाता है। जिससे शर्करा का दाह न होकर वह मूत्र-मार्ग से जाने लगती है। स्वभाव में दुबले व्यक्ति चिड़चिड़े और स्थूल व्यक्ति प्रसन्न चित्त होते हैं।

पतले व स्थूल दोनों प्रकार के व्यक्तियों को व्यायाम और प्राणायाम का आश्रय लेकर अपनी-अपनी कमी दूर करनी चाहिये। प्राणायाम द्वारा पतला व्यक्ति अपने फेफड़ों से पूर्णतया काम लेकर उन्हें सरल आक्राम्यता से बचा सकता है। स्थूल व्यक्ति व्यायाम और प्राणायाम से शर्करा को खर्च कर सकता है, तथा उसके लिए आवश्यक ओषजन प्राप्त कर सकता है। पेट के आसन पतले व्यक्ति को सामर्थ्य व बल प्रदान करेंगे। स्थूल व्यक्ति पेट को तोंदरूप में परिणत होने से बचा लेगा।

सौन्दर्य, स्वास्थ्य, सुडौलता और सुख का 'व्यायाम-चर्या' उत्तम साधन है। इसके प्रचार द्वारा देश में बलिष्ठ व स्वस्थ सन्तति का निर्माण करना प्रत्येक देश-प्रेमी का कर्त्तव्य है। इस दृष्टि से हमारा देश बहुत पीछे है। मनुष्य-सन्तान का स्वास्थ्य व सौन्दर्य बढ़ाने की जितनी आवश्यकता इस समय है, उतनी शायद पहले कभी भी नहीं हुई थी। निर्बल, निस्तेज और कुरूप सन्तान जाति और देश के लिए अभिशाप हैं। 'व्यायामचर्या' का आश्रय लेकर हम अपनी इस कमी को दूर कर सकते हैं।

चमत्कारी आसन

आसनों का आविष्कार भारत के लिए गौरव की वस्तु है। व्यायाम के क्षेत्र में दण्ड और बैठक की तरह भारत में आसन-पद्धति भी प्रदान

की गई है। परन्तु प्रत्येक वस्तु का अपना स्थान होता है। शारीरिक विकास के लिए आसनों का महत्व कम है। १६ वर्ष की आयु से लेकर ४५ वर्ष तक के व्यक्तियों को ऐसे व्यायाम की आवश्यकता है, जिनसे उनकी पेशियाँ संकोचात्मक, प्रसारात्मक और अवस्थित्यात्मक—तीनों प्रकार की स्थिति में होकर शक्ति लगाने का अवसर प्राप्त करें। पेशियों के पूर्ण विकास के लिए इसकी आवश्यकता है। आसनों के व्यायाम में ये तीनों स्थितियाँ पेशियों को नहीं प्राप्त होतीं। आसन प्रसारात्मक हैं अर्थात् पेशियाँ तनाव की अवस्था में ही अधिकतर लायी जाती हैं। इसकी आवश्यकता केवल उन लोगों को है, जिनके शरीर विकसित हो चुके हैं। स्वास्थ्य स्थिर रखने के लिए केवल शारीरिक लचक को बनाये रखना आवश्यक है। आसनों के लाभ निम्नलिखित हैं :—

१. नाड़ियाँ लचकदार होती हैं। ४० वर्ष के बाद रक्त-प्रणालियों का स्वाभाविक लचक कम होने लगती है। अतः आसन उस अवस्था में लाभकर होते हैं।

२. शरीर में वसा बढ़ने लगी है, उसे हल्का करने के लिए ४० वर्ष के बाद आसन उपयोगी है।

३. ४० वर्ष के बाद हृदय की शक्ति को सुरक्षित रखने की अधिक आवश्यकता है, उस दृष्टि से आसन उपयोगी व्यायाम है।

सारांश यह कि आसन-पद्धति का अवलम्बन विशेषतः वयस्क व्यक्तियों को ही करना चाहिये।

इस पुस्तक में उन आसनों को स्थान दिया गया है, जो सबके लिये विशेष लाभकर हैं।

शीर्षासन—मस्तिष्क मनुष्य-शरीर का सर्वोत्तम रहस्यमय स्थल है। इसे रक्त की अत्यधिक आवश्यकता है, अतः इसमें परमात्मा ने असंख्य केशिकाओं का सूक्ष्मजाल बिछाया है। शीर्षासन से एक बारगी मस्तिष्क

रक्त से आप्लावित (तर) हो जाता है । शीर्षासन मस्तिष्क जैसे स्थल को रक्त से शान्तिपूर्वक तर कर देता है, अतः इसका अधिक महत्त्व है।

शीर्षासन प्रातःकाल व्यायाम से पूर्व करना चाहिये । ताकि सर्वप्रथम मस्तिष्क को रक्त-स्नान का अवसर प्राप्त हो । व्यायाम करने के बाद यदि शीर्षासन किया जाय तो व्यायाम से थके स्थानों को रक्त मुख्यतया न पहुँचकर मस्तिष्क में जायगा, जहाँ कि इस समय इतनी आवश्यकता नहीं है ।

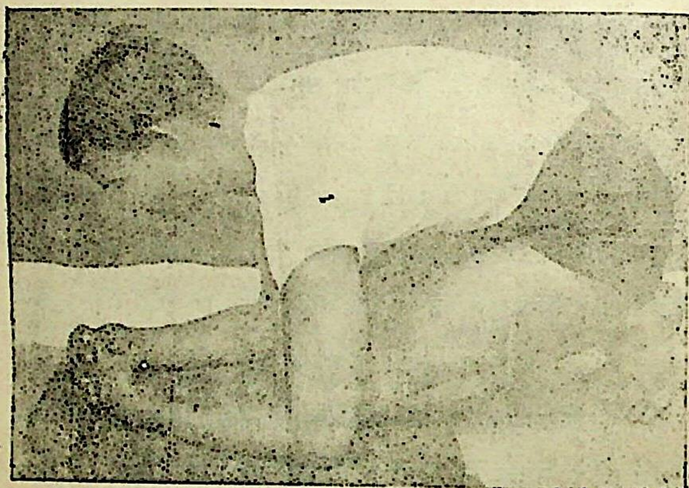
इस आसन का सर्वाधिक महत्त्व इसलिए भी है कि यह मस्तिष्क को पूर्ण स्वस्थ व ताजा बनाता है। वेगपूर्वक रक्त का प्रवाह जाने से रक्तवाहिनियाँ साफ हो जाती हैं । उचित पोषण के अभाव से जिनके बाल समय से पूर्व सफेद हो गये हैं, शीर्षासन करने से उनके बाल पुनः काले हो जाते हैं, ऐसा बहुत से लोगों का अनुभव है । मेचनिकाफ नामक विद्वान् का वृद्धावस्था के सम्बन्ध में बड़ा विचित्र मत है। वह कहता है कि "वृद्धावस्था का मुख्य कारण हमारी बृहदन्त्र है, जिनमें मल देर तक रहता है । इस समय मल में बहुत से सेन्द्रिय विष पैदा हो जाते हैं, जो कि शोषित होकर रक्त में मिल जाते हैं। रक्त में विद्यमान् श्वेत कण, जो कि रोगाणुओं को खा जाते हैं और रक्षक फौज का काम करते हैं, विष के कारण उन्मत्त या पागल हो जाते हैं। पागलपन में आकर ये कण अट-पटांग काम करने लगते हैं और अपना स्वाभाविक धर्म छोड़ देते हैं । ये उन्मत्त कण शरीर के तन्तुओं का विनाश करते हैं और बालों को काले करने वाले रञ्जक पदार्थ के कणों को भी खा जाते हैं। फलतः बाल सफेद हो जाते हैं । जो वृद्धावस्था की निशानी है ।" यदि शीर्षासन द्वारा ताजा रक्त बहुतायत से सिर की ओर पहुँचाया जाय तो बालों का पोषण भी ठीक से होगा तथा स्वच्छता भी रहेगी । इससे बालों का असमय में सफेद होना बन्द हो जायगा ।

शीर्षासन करने की विधि

सिर को आधार बनाकर उल्टा खड़े होने का नाम शीर्षासन है। प्रारम्भ में अभ्यास न होने के कारण उलटकर खड़ा होना कठिन होता है। अतः दीवार के सहारे से यह अभ्यास किया जाता है। रूई का मोटा आसन भूमि पर दीवार के सहारे बिछा लेना चाहिए। ताकि सिर में फर्श न चुभे और सिर व हाथ आराम के साथ रहें। दोनों हाथों की उँगलियों को फँसाकर अञ्जलि बनालें। घुटनों के बल बैठ जायें। हाथों को कोहनी सहित गुद-गुदे आसन पर रखें। हाथों के दोनों अँगूठे ऊपर की ओर रहेंगे। शरीर का भार कोहनी तक टिके हुए हाथों पर डालते हुए सिर पर झुकाकर मस्तक को हाथों के बीच में रखें। धीरे-धीरे पैर ऊपर उठायें और दीवार से टेक दें। एड़ियाँ दीवार से लगेंगी। १० सेकेण्ड तक रुकने की कोशिश करें। अभ्यास होने पर १-२ मिनट तक रुकना चाहिये। प्रारम्भ में रक्त का वेग सिर की ओर होने से आंखे लाल और नाक बन्द हो जायेगीं। ऐसी अवस्था में भी श्वास नाक से ही लेने का प्रयत्न करना चाहिए। कुछ मास अभ्यास करने पर नाक बन्द होना बन्द हो जायगा। उस समय स्वाभाविक रीति से श्वास चल सकेगा। चित्र सं० २४ देखें।

शीर्षासन के चार भेद

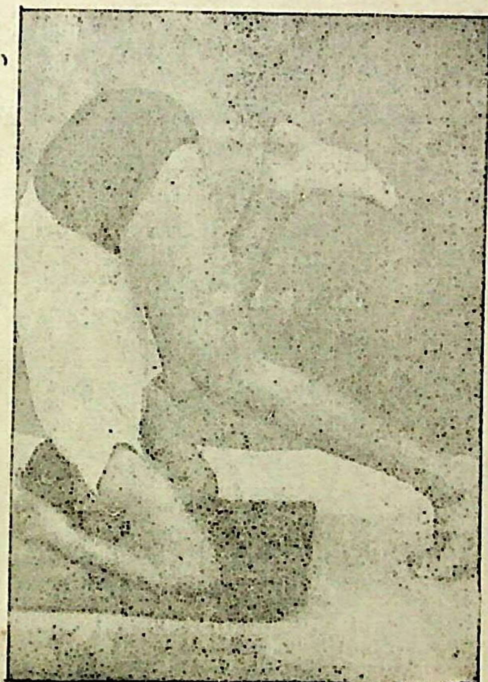
चित्र सं० २४ (क) (ख) (ग) (घ)



शीर्षासन—चित्र सं० २४ (क)

१. चित्र सं० २४ (क) २. चित्र सं० २४ (ख)
३. चित्र सं० २४ (ग) ४. चित्र सं० २४ (घ)।

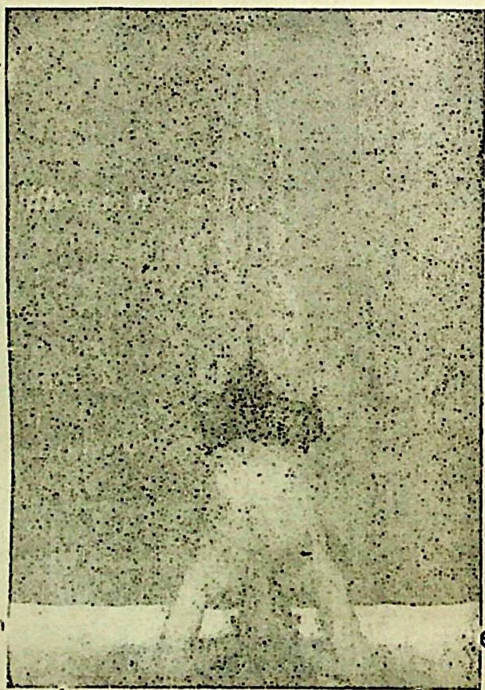
चित्र सं० २४ (क)—पञ्जों के बल घुटने टेककर बैठ जायें। दोनों हाथों की उँगलियों को आपस में फँसाकर कोहनी सहित अग्रबाहु को गुद-गुदे आसन पर टेक लें। इस प्रकार शरीर के सम्पूर्ण भार को रोकने के लिए तीन आधार—दो कोहनियां और एक हाथों की अञ्जलि—बन गये हैं।



शीर्षासन—चित्र सं० २४ (ख)

चित्र सं० २४ (ख)--हाथों की अञ्जलि के आगे माथा टेक दें तथा सिर का पिछला भाग अञ्जलि में रखें। ऐसा करने से शरीर को उल्टा खड़ा होने के लिए पर्याप्त आधार बन जायगा। अब नितम्ब को ऊपर उठाते हुए पैर के पंजे से भूमि को धक्का देकर उन्हें ऊपर फेंक दें और धैर्य के साथ दोनों पैरों को ऊपर उठा दें, जैसा कि चित्र सं० २४ (ग) में दिखाया है।

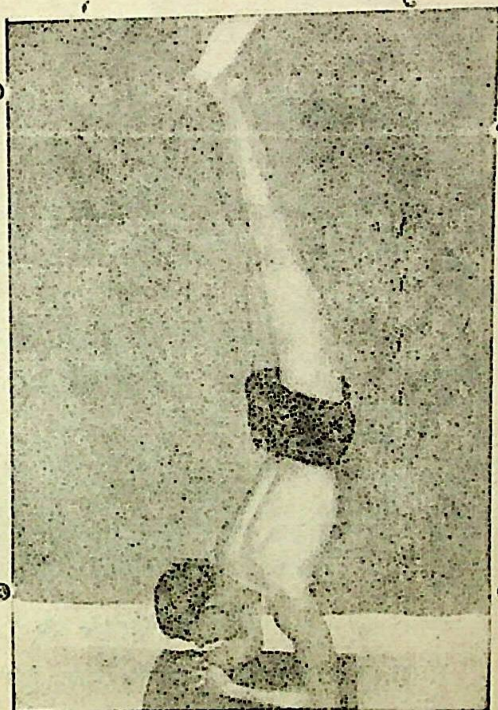
चित्र सं० २४ (ग)—एक मोटे गद्दे पर सम्पूर्ण शरीर—दोनों कोहनियों तथा अञ्जलिगत सिर को आधार बनाये स्थित है। यही शीर्षासन की पूर्णावस्था है। जिस प्रकार तिपाई के तीन आधार होते हैं, उसी प्रकार शीर्षासन के भी तीन आधार—दो कोहनियाँ और एक अञ्जलिगत सिर—हैं। इससे



शीर्षासन-चित्र सं० २४ (ग)

शरीर का भार कोहनियों और माथे पर बँटा हुआ रहता है। माथे पर थोड़ा सा जो भार पड़ता है, उसको सम्हालने में हाथ की अञ्जलियाँ बहुत सहायता करती हैं। उत्तमाङ्ग (सिर) पर अधिक भार न पड़े, यही अच्छा है। अधिक अभ्यास होने पर सिर को ऊपर उठाया जा सकता है। जैसा कि चित्र सं० २४ (घ) में दिखाया गया है।

चित्र सं० २४ (घ)—शीर्षासन करने के पश्चात् सिर को हाथ की अञ्जलियों में से ऊपर उठा लिया है। अब शरीर का सम्पूर्ण भार दो कोहनियों और अकेली अञ्जलि पर ही है। सिर (उत्तमाङ्ग) सर्वथा मुक्त है। इससे यह दिखलाया गया है कि

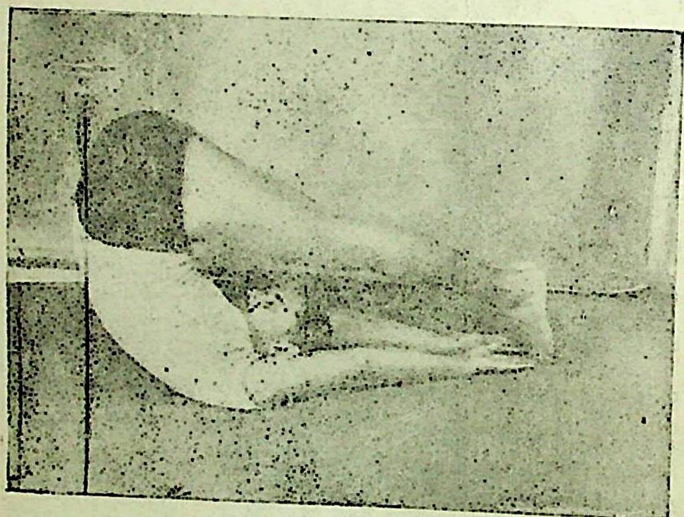


शीर्षासन—चित्र सं० २४ (घ)

शीर्षासन करने वालों के लिए आवश्यक है कि वे यह प्रयत्न करते रहें कि यथासम्भव सिर पर शरीर का भार अधिक न आने पाये।

इस चित्र में दिखाया गया प्रकार अत्यधिक अभ्यास होने पर ही सिद्ध होता है। परन्तु यह सभी के लिए आवश्यक नहीं है। शीर्षासन की पूर्णता चित्र सं० २४ (ग) में दिखाई गई है।

हलासन



हलासन चित्र सं० २५

आसन पर चित्त लेटकर दोनों हाथ पार्श्व में रखें। हथेलियाँ भूमि पर टिकेंगी। पैर मिले हुए और सीधे रहने चाहिये। अब पैरों को पेट पर से मोड़ते हुए धड़ के ऊपर इस प्रकार लावें कि पैर के अँगूठे सिर से ऊपर भूमि पर टिकें। पैर घुटनों से नहीं मुड़ने चाहिए। प्रारम्भ में ऐसा करना कठिन होगा, पर अभ्यास से होने लगेगा। ठोड़ी वक्षोऽस्थि के ऊपर लग जायगी। अब हाथों को भी सिर के ऊपर ले जायें और पैर के अगूँठों को छू लें। जैसा चित्र सं० २५ में दिखाया गया है।

हलासन से अवटुका-ग्रन्थि (Thyroid Gland) पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इस कारण इस आसन को अधिक महत्त्व दिया जाता है। अवटुका-ग्रन्थि शरीर की वृद्धि और मस्तिष्क की शक्ति से सम्बन्ध

रखती है। इसके विकृत होने पर मूढ़ता और वामनत्व की प्राप्ति होती है। अतः इस ग्रन्थि को स्वस्थ रखने के लिए यह आसन सर्वोत्तम है। इस ग्रन्थि की स्थिति गले में सामने की ओर है। आसन करते समय ठोड़ी से वक्षोऽस्थि मिलने पर इस ग्रन्थि पर दबाव पड़ेगा। मेरुदण्ड के लिए भी यह आसन लाभकर है।

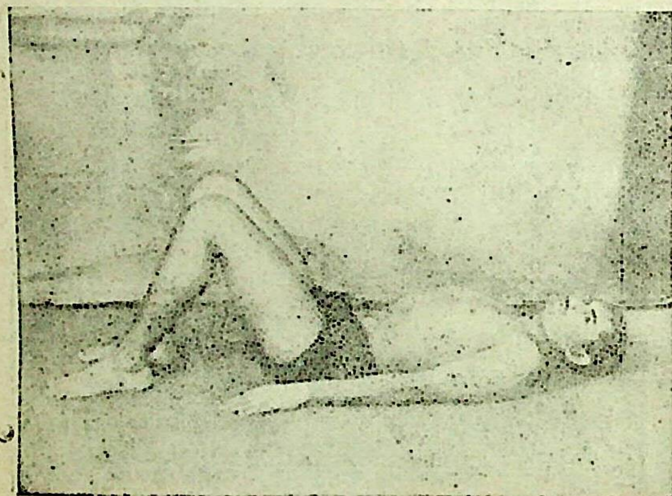
प्राणायाम के अभ्यास

परिपुष्ट छाती किसी भी युवक के लिए शरीर की शोभा है। उभरे हुए सीने वाले पुरुष को मस्तानी चाल से जाते हुए देखकर किसे प्रसन्नता नहीं होती? शरीर का सौंदर्य चौड़ी छाती पर बहुत कुछ निर्भर है। परन्तु परिपुष्ट छाती का केवल इतना ही तात्पर्य नहीं है कि छाती को ढँकने वाली पेशियाँ मांसल हों, अपितु वक्षगुहा के भीतर जीवन के आधारस्वरूप अङ्ग— फेफड़े और हृदय—भी सशक्त हों। क्योंकि इन हृदय, फेफड़े, यकृत और वृक्क आदि के सशक्त हुए बिना शरीर कदापि बलवान नहीं बन सकता।

प्राणायाम से हृदय, फेफड़ा, वक्ष की पेशियाँ, आँत और यकृत को बल मिलता है। ताजी वायु रक्त में मिलकर तुरन्त नवचेतना जागृत करती है। जिससे रक्त के प्रवाह में शक्ति संचार होता है। वायु का प्रत्येक कण अमोघ अतुलित बल लिये हुए हमारे रक्त में जाता है और हमारी अंतःशक्ति में उबाल लाता है। प्रत्येक व्यक्ति इसका अनुभव प्राणायाम को नियमित रूप से करके कर सकता है।

प्राणायाम के साथ करने के लिए यहाँ पर कुछ अभ्यास दिये जाते

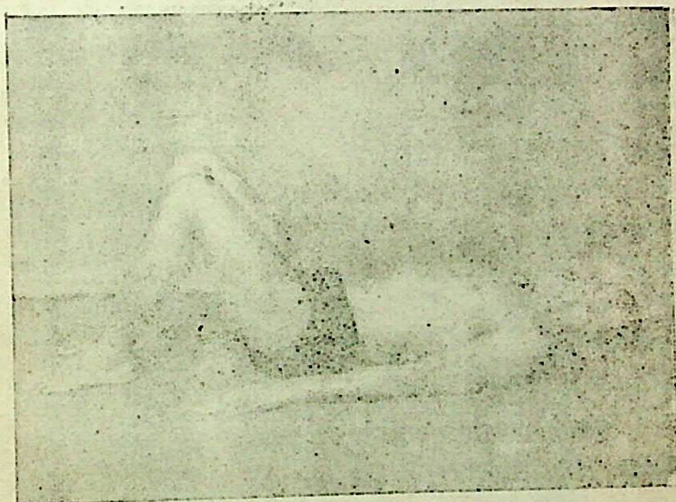
हैं, जिनसे फेफड़े, हृदय आदि बलवान् होंगे तथा रक्त ओषजन प्राप्त कर अलौकिक, अनिर्वचनीय ओज प्रदान करेगा।



प्राणायाम के अभ्यास—चित्र सं० २६

अभ्यास सं० १—शरीर को शिथिल करके चित्त लेट जाइये। दोनों हाथ पार्श्व में पड़े रहेंगे। हथेलियां भूमि की ओर होंगी। अब दोनों पैरों को घुटने से मोड़कर नितम्ब से पौन फुट की दूरी तक सिकोड़ लीजिये। प्रथम पेट को दबाइये और श्वास को पूर्ण रीति से बाहर निकालिये (रेचक कीजिये)। ऐसा करने से पेट और वक्ष दोनों संकुचित होंगे। पूरी तरह से रेचक होने पर श्वास को लगभग ६ सेकेण्ड तक बाहर ही रोके रहिये (कुम्भक कीजिये)। चित्र सं० २६ की तरह कुम्भक के बाद धीरे-धीरे श्वास को भीतर भरिये (पूरक कीजिये)। सम्पूर्ण शक्ति से

वायु को फेफड़ों में भर डालिये। पेट कुछ फूल जायेगा और वक्ष भी उभर आयेगा। चित्र सं० २७ की तरह इस प्रकार रेचक, कुम्भक और पूरक तीनों को मिलाकर एक प्राणायाम हो गया। इसी प्रकार पांच बार कीजिये। कछुए की चाल की तरह "नियमित, स्थिर और गतिशील होकर अभ्यास" बढ़ाते जाइये।

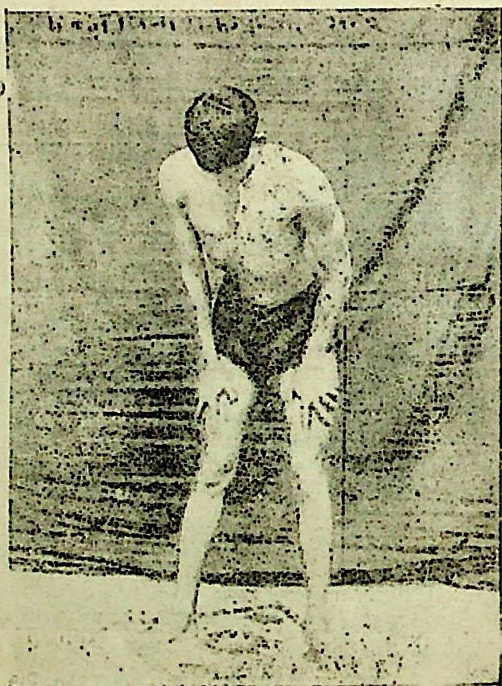


प्राणायाम के अभ्यास—चित्र सं० २७

अभ्यास सं० २—आसन पर चित्त लेट जाइये। हाथों को पार्श्व में मुट्ठी बांधकर रखिये। श्वास को बलपूर्वक बाहर निकाल दें (रेचक करें)। अब हाथों को धीरे-धीरे ऊपर उठायें और पीछे सिर के ऊपर तक ले जायें, जिससे कि वे भूमि पर लग जायें। ऐसा करते हुए धीरे-धीरे पूरक भी करते जायें। वक्ष में श्वास पूर्ण रीति से भर गया है, ऐसी अवस्था में पाँच सेकेण्ड तक कुम्भक करें। कुम्भक के बाद रेचक करते हुए हाथों को पूर्वावस्था में लायें। पुनः श्वास को बाहर रोककर २

सेकेण्ड तक कुम्भक करें। यह एक प्राणायाम हो गया। इसी प्रकार ५ बार करें।

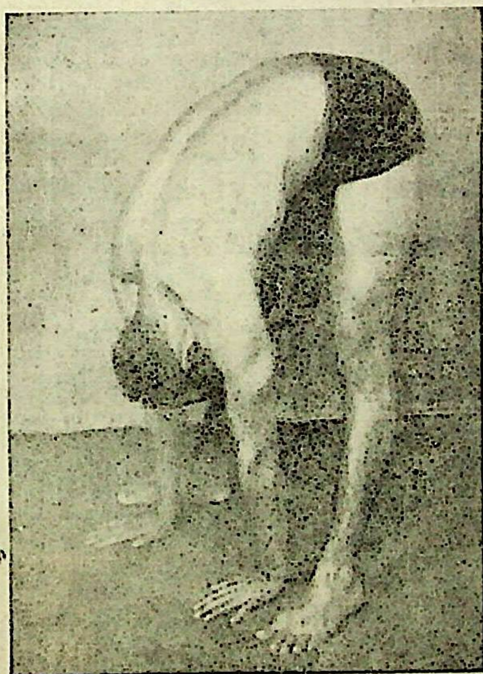
अभ्यास सं० ३—सीधेसावधान की स्थिति में १५ इंच चौड़े पैर कर खड़े हो जायें। हाथों को कमर पर रखिये। मुख पर किसी प्रकार की सिकुड़न न लाते हुए 'पूरक' करें, अर्थात् अधिक से अधिक वायु फेफड़ों में भरें। पूरक करते हुए सदा ध्यान रहे कि नथुने आपस में



प्राणायाम के अभ्यास—चित्र सं० २८

भिचकर वायु जाने का मार्ग संकुचित न कर दें। नथुने सदा पूरी तरह खुले रहने चाहिये। ५ सेकेण्ड तक कुम्भक करें। तदनन्तर धीरे-धीरे 'रेचक' कर सम्पूर्ण वायु को बाहर निकाल दें। पेट संकोच के कारण कठोर हो जायगा। २ सेकेण्ड तक कुम्भक करें। इस प्रकार एक प्राणायाम हो गया। ऐसा ५ बार करें।

अभ्यास सं० ४--दोनों पैरों को १५ इंच के अन्तर पर फैला कर खड़े हो जाइये। हाथों को घुटनों पर टेककर आगे झुक जाइये। जैसा कि चित्र सं० २८ में दिखाया गया है। इस अवस्था में पूरी शक्ति लगाकर 'रेचक' करें। फिर 'कुम्भक' करके पेट को भीतर खींच लें।



प्राणायाम के अभ्यास--चित्र सं० २९

पेट पीछे रीढ़ की हड्डियों से जा मिलेगा। चित्र सं० २८ में यह स्थिति दिखाई गई है। कुछ देर ऐसा करने के बाद सीधे होते हुए सम्पूर्ण शक्ति से पूरक करें। छाती पूर्ण रीति से फैल जायगी। पेट के ऊपर का भाग जो पसलियों के ठीक नीचे है, कुछ आगे निकल आयेगा। यह एक प्राणायाम हो गया। इसे ५ बार कीजिये।

अभ्यास सं० ५–पैरों को १५ इञ्च के अन्तर पर रखकर चित्र सं० २९ में दिखाये तरीके से झुककर खड़े हो जाइये। यह स्थिति इस अभ्यास को प्रारम्भ करने की है। पैर घुटनों से नहीं मुड़ेंगे। हाथ भूमि को स्पर्श करते रहेंगे। सम्पूर्ण शक्ति लगाकर रेचक करें। २ सेकेण्ड तक कुम्भक करें। अब पूरक करते हुए धीरे-धीरे चित्र



प्राणायाम के अभ्यास—चित्र सं० ३०

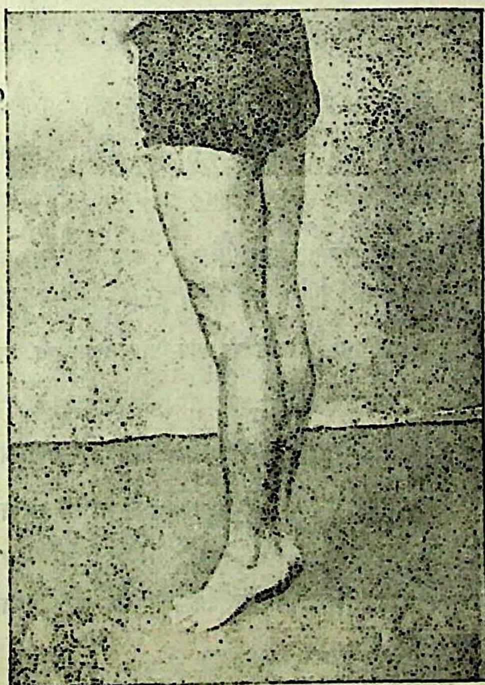
सं० ३० में दिखलाई स्थिति में आ जाइये। अर्थात् दाहिना पैर घुटने से मुड़ जायगा, पैर अपने स्थान से नहीं हिलेंगे। दोनों हाथ सिर के ऊपर आकर स्थित हो जायँगे। छाती वायु से पूर्ण होकर उभर जायगी। बायाँ पैर घुटने से नहीं मुड़ेगा। इस दूसरी स्थिति में आने तक पूरक हो चुकेगा। यहीं रुककर ५ सेकेण्ड तक कुम्भक करिये। इसके बाद रेचक

करते हुए धीरे-धीरे प्रारम्भ करने की स्थिति में पहुँच जाइये। यहाँ आने तक बलपूर्वक वायु बाहर निकाली जा चुकेगी। ३ सेकेण्ड तक कुम्भक करिये। यह एक प्राणायाम हो गया। अब प्रारम्भ करने की इसी स्थिति से बायें पैर को झुकाकर बायीं ओर रुख करते हुए पूर्ववत् दूसरा प्राणायाम करिये। दोनों पार्श्वों से समान संख्या में प्राणायाम करना चाहिये।

पेशियों के व्यायाम

पिण्डलियों के अभ्यास

अभ्यास स० १—सावधान की स्थिति में खड़े हो जाइये। अर्थात् एड़ी मिली, पञ्जे खुले, दोनों पञ्जों में ४५ अंश का कोण, हाथ कमर पर, दृष्टि सामने और छाती उभरी हुई। पञ्जों पर जोर लगाते हुए खड़े हो जाइये, जैसा कि चित्र सं० ३१ में दिखाया गया है।



पिण्डलियों के अभ्यास--चित्र सं० ३१

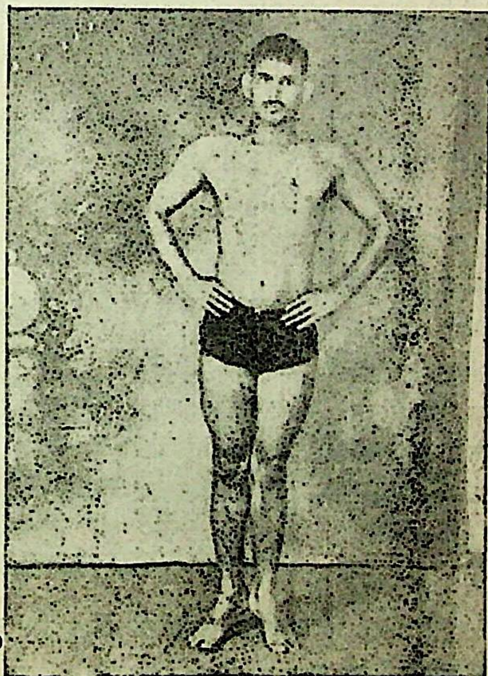
ऐसा करते हुए आगे या पीछे न झुकें, न गिरें। प्रारम्भ में यदि शरीर का संतुलन न सधे तो दीवार का सहारा लेकर यह अभ्यास करना चाहिये। इस अभ्यास को करते हुए पूरी शक्ति से अधिक से अधिक ऊँचा उचककर खड़े होना है। अतः धीरे-धीरे नीचे आकर पूर्वस्थिति में हो जावें। प्रारम्भ में यह अभ्यास २० बार करना चाहिये। धीरे-धीरे अभ्यास द्वारा १००–१५० तक बढ़ाया जा सकता है।

अभ्यास सं० २—ऊपर के अभ्यास से जब पिण्डलियाँ थक जायें तो कुछ विश्राम करके यह दूसरा अभ्यास प्रारम्भ करना चाहिये। सावधान की स्थिति (जैसी कि अभ्यास संख्या १—में बतायी गयी है) में खड़े हो जाइये। हाथ कमर पर रखिये। अब शरीर का सम्पूर्ण भाग दायें पैर पर स्थिर कर बायाँ पैर २५ इञ्च आगे निकालकर पञ्जा भूमि पर टेक दें। दोनों पैर सीधे रहेंगे। अर्थात् घुटनों से नहीं मुड़ेंगे। बायाँ पैर का पञ्जा भूमि पर टेकते हुए पिण्डलियों की सम्पूर्ण शक्ति से उसे सीधा और कड़ा कीजिये। क्षण भर ठहरकर बायें पैर की एड़ी को भूमि पर स्पर्श कराइये, और पञ्जा ऊपर उठाकर अपनी ओर खींचिये। ऐसा करने में पिण्डलियों की पूर्ण शक्ति खर्च करिये। क्षण भर रुककर पुनः पंजे का स्पर्श पूर्ववत् कराइये और एड़ी उठा लीजिये। इसी अभ्यास को तब-तक करते रहिये जब-तक कि बायें पैर की पिण्डलियाँ अच्छी तरह न थक जायें।

इसके बाद बायें पैर पर शरीर का भार स्थिर कर, दायें पैर से यही अभ्यास करना चाहिये।

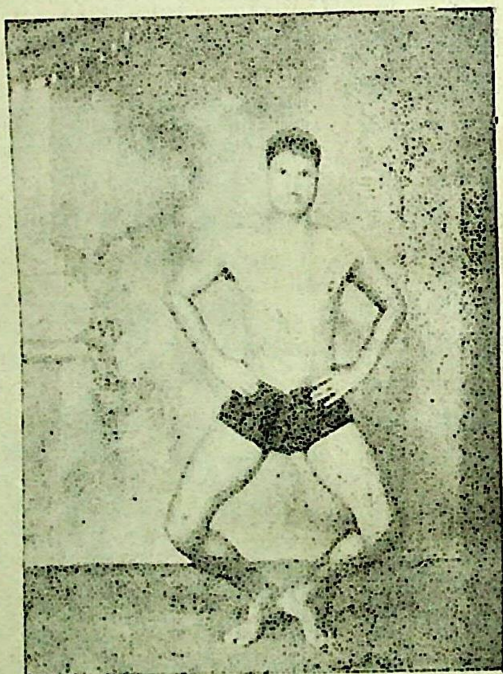
जंघाओं के अभ्यास--बैठक

अभ्यास सं० १---सावधान की स्थिति में खड़े हो जाइये। हाथों को कमर पर रख लीजिये। पंजों को ४५° अंश के कोण पर खोल लीजिये। दृष्टि सामने रहे। पंजों के बल अब ऊपर उचक जाइये। एड़ियां मिली हुई रहेंगी और आपस में परस्पर एक-दूसरे के विरुद्ध शक्तिपूर्वक दबाती रहेंगी। जंघाओं, पिण्डलियों की संपूर्ण पेशियाँ पूर्णतया तनी हुई होनी चाहिये, जैसा चित्र सं० ३२ में दिखाया गया है। यह बैठक करने की "आरम्भिक स्थिति" है। अब दृष्टि को सीधा सामने तथा मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए बैठना प्रारम्भ कीजिए। एड़ियाँ बैठक करने के कुल समय तक एक- दूसरे के विरुद्ध दबाव डालती रहेंगी।

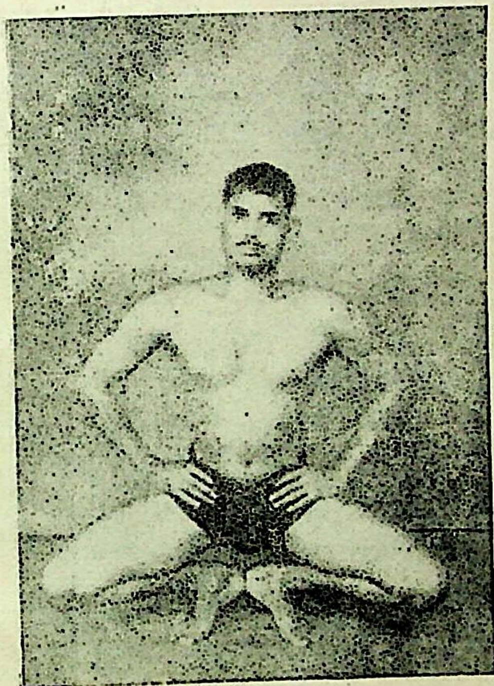


जंघाओं के अभ्यास—चित्र सं० ३२

यह स्थिति चित्र सं० ३३ में दिखाई गयी है। अन्त में आप बैठकर चित्र स०३४ में दिखाई गई स्थिति में आ जायेंगे। आपके घुटने फैले हुए अधिक-से-अधिक दूर होने चाहिये। बैठी हुई अवस्था से धीरे-धीरे खड़े होकर आरम्भिक स्थिति में पहुँच जाइये। यह एक बैठक हुई। प्रारम्भ में आप सामर्थ्यानुसार २५ बैठकें कर सकते हैं। अभ्यास द्वारा बल के अनुसार बढ़ाते जाइये। साधारण काम-काजी आदमी के लिए १०० बैठकें प्रतिदिन काफी हैं। १०० बैठकों तक कम से कम ६ मास में निरन्तर व्यायाम करते हुये पहुँचना चाहिये। मास-डेढ़-मास में ही १०० बैठकें करने लगना साधारण व्यक्ति के लिये उचित नहीं। यह नियम याद रखिये—कम करना पर सदा करना।

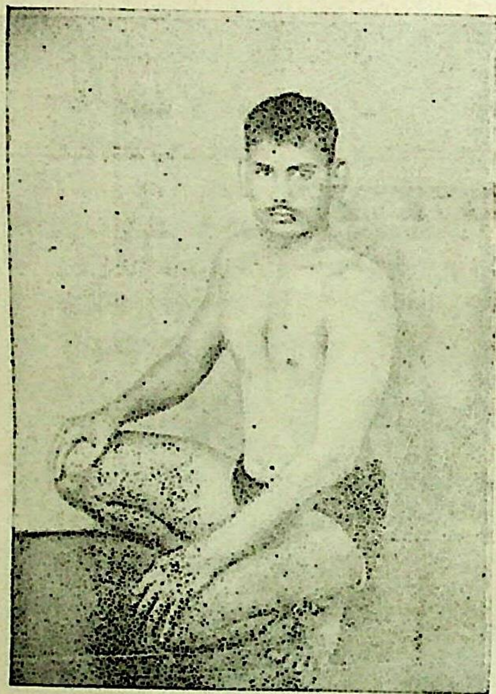


जंघाओं के अभ्यास – चित्र सं० ३३



जंघाओं के अभ्यास—चित्र सं० ३४

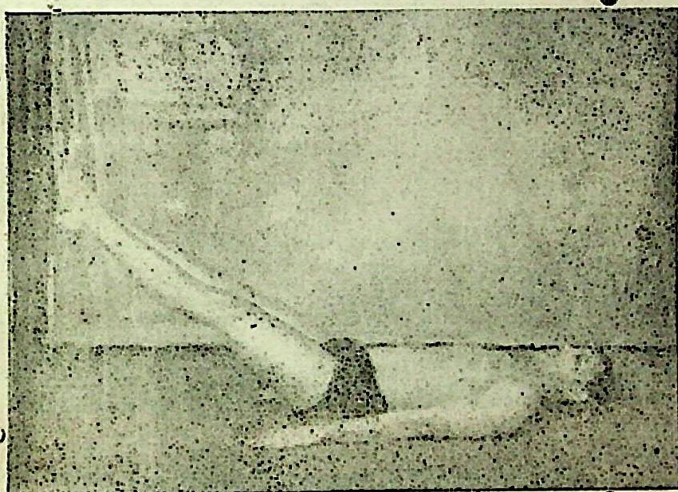
अभ्यास सं० २—बायें पैर की एड़ी उठाकर पंजे के बल बैठ जाइये। दायें पैर का पंजा भी भूमि पर रहेगा। यह बायें पैर से एक फुट आगे भूमि पर टिका होगा। पैर के दोनों पंजों के अतिरिक्त कोई भी भाग भूमि को स्पर्श नहीं करेगा। दोनों हाथ क्रमशः दोनों पैरों के घुटनों पर रहेंगे। दृष्टि सामने रहे, नीचे नहीं।



जंघाओं के अभ्यास--चित्र सं० ३५

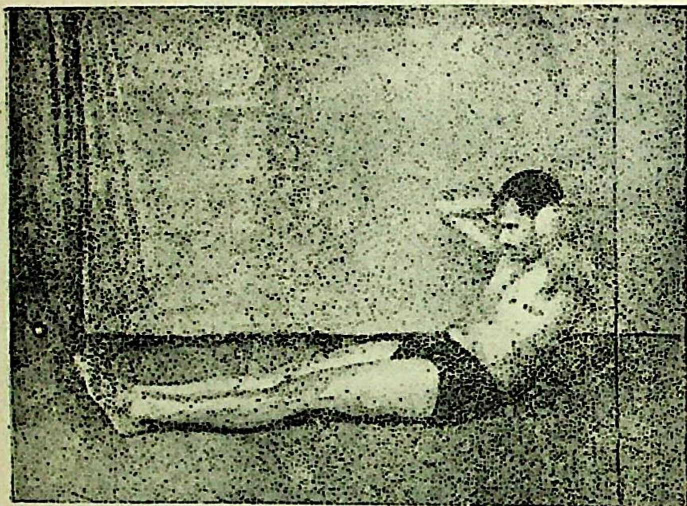
यह आरम्भिक स्थिति चित्र सं० ३५ में दिखाई गई है। अब उछल-कर बाँये पैर की एड़ी पर से दायें पैर की एड़ी पर आ जाइये। ऐसा करने के लिए दायें पैर का पंजा १ फुट पीछे और बायें पैर का पंजा १ फुट आगे आ जायगा। इस अभ्यास में अगले पैर की एड़ी अपेक्षाकृत भूमि के अधिक निकट रहेगी। पर कोई एड़ी भूमि को स्पर्श नहीं करेगी। इस अभ्यास को कुछ देर करना चाहिये। एक बार बायीं एड़ी, दूसरी बार दांयीं एड़ी पर।

उदर-पेशियों के अभ्यास



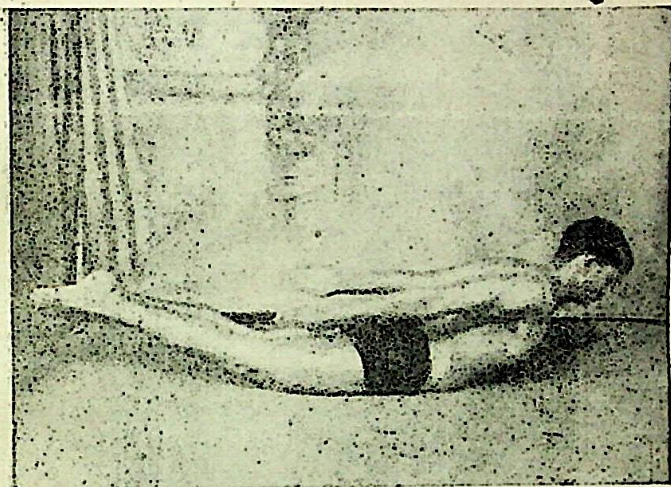
उदर-पेशियों के अभ्यास—चित्र सं० ३६

अभ्यास सं० १—आसन पर चित्त लेट जाइये। दोनों हाथों को पार्श्व में रखिये। हथेलियाँ भूमि पर रखिये। अब दोनों पैरों को धीरे-धीरे उठाइये। डेढ़ फुट ऊँचाई तक उठाकर रोक लीजिए। क्षणभर रुककर धीरे-धीरे नीचे लाइये। यह एक बार हो गया। पैरों को उठाते हुए घुटने से मत मोड़िये। दोनों पैर मिले रहेंगे। मुख पर किसी प्रकार की सिकुड़न नहीं होनी चाहिये। पेट की पेशियाँ शक्तिमती होने पर यह अभ्यास भूमि पर पैरों को टेके बिना एक साथ ७-८ बार करना चाहिये। अधिक अभ्यास होने पर संख्या बढ़ाते जाइये। चित्र सं० ३६ को देखिये।



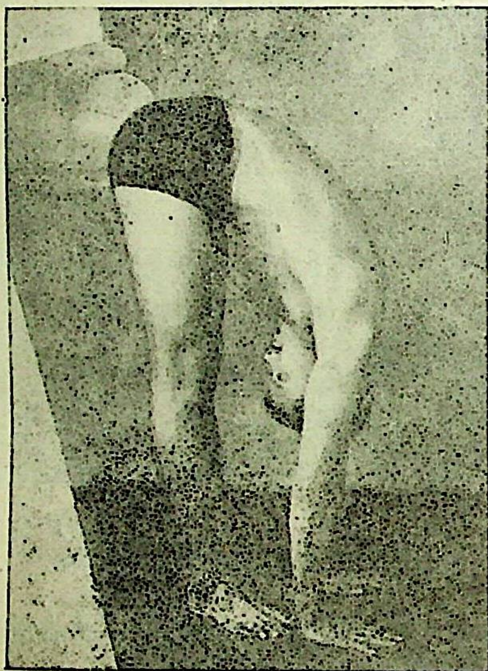
उदर-पेशियों के अभ्यास—चित्र सं० ३७

अभ्यास सं० २— आसन पर चित्त लेट जाइये। हाथों को सिर के नीचे, हाथ ऊँगलियाँ एक दूसरे में फँसाकर रख लीजिये, जैसा कि चित्र सं० ३७ में दिखाया गया हैं। दोनों पैरों को मिले हुये रखिये। घुटने मुड़ने न पायें और पैर भूमि से ऊपर न उठें। इन सावधानियों को ध्यान में रखकर, उठकर बैठ जाइयें। ऊपर उठते हुए श्वास को वेग से बाहर निकालिये। जब आपका धड़ भूमि पर लम्बरूप हो, तब श्वास पूर्णतया बाहर निकालकर पेट के भीतर खिंच जाना चाहिये। क्षण भर बैठे हुए। इस स्थिति में रहकर पुनः पूर्ववत् धीरे-धीरे लेट जाइये। पैर सीधे, भूमि से लगे हुए और आपस में मिले हुए रहने चाहिये। चित्र सं० ३७ को देखिये



उदर-पेशियों के अभ्यास—चित्र सं० ३८

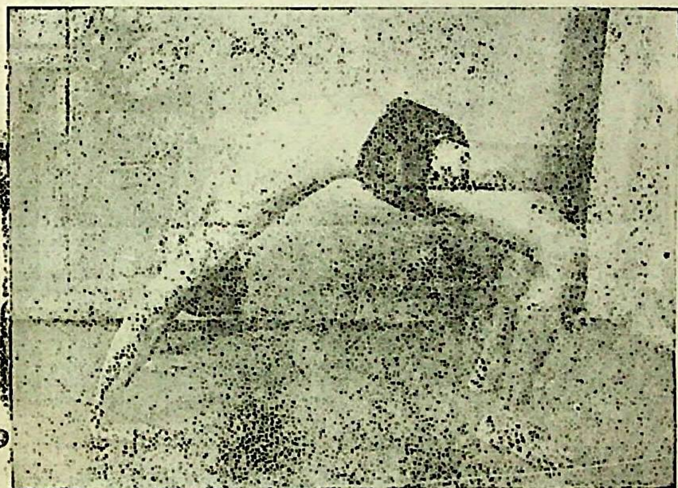
अभ्यास सं० ३—आसन पर लेट जाइये। पैर सीधे मिले और भूमि से सटे हुए रहेंगे। हाथों को पीछे पीठ के ऊपर तानकर फैला लीजिए। पैरों को सीधा रखते हुये ऊपर उठाइये, इसके साथ-साथ हाथ और सिर भी ऊपर उठ जायेंगे। अर्थात् सम्पूर्ण शरीर धनुषाकार होकर पेट के बल भूमि पर टिकेगा। जैसा कि चित्र सं० ३८ में दिखाया गया है। जाँघ और पीठ की पेशियाँ संकुचित होंगी। तथा उदर व वक्ष की पेशियों पर तनाव पैदा होगा। यह अत्यन्त हितकर अभ्यास है। बल-पूर्वक धनुषाकार स्थिति में होकर क्षण भर ठहरिये। पुनः 'आरम्भिक स्थिति' में आ जाइये। पाँच बार अभ्यास को करिये।



उदर-पेशियों के अभ्यास—चित्र सं० ३९

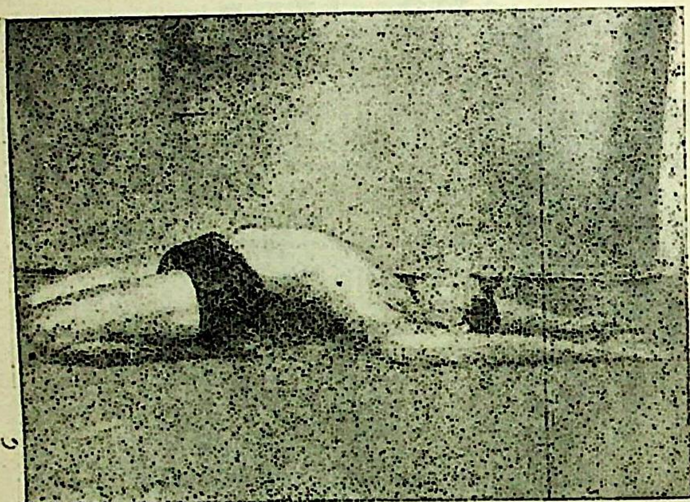
अभ्यास सं० ४—सावधान की स्थिति में खड़े हो जाइये। एड़ी मिली, पञ्जे खुले, घुटने सीधे, दृष्टि सामने, हाथ ऊपर पूरी तरह उठाइये। पैरों को न मोड़ते हुए पीछे की ओर जहां-तक झुक सकें, झुकिये। क्षण भर रुककर सीधे हो जाइये और आगे झुकते चले आइये। जब-तक कि आपके हाथ भूमि पर अच्छी तरह टिक न जायें, श्वास को आगे झुकते हुए बाहर निकालिये। पैर सीधे रहेंगे, सिर दोनों हाथों के मध्य में। हाथ की हथेलियां पैरों के आगे पूरी तरह भूमि पर टिकी होंगी। यह स्थिति चित्र सं ३९ में दिखाई गई है।

मेरुदण्ड का व्यायाम



मेरुदण्ड के व्यायाम--चित्र सं० ४० (चक्रासन)

अभ्यास सं० १— सावधान की स्थिति में खड़े होकर पैरों को १६ या १७ इञ्च चौड़ा कर लीजिये। पैर सीधे। हाथों को सिर के ऊपर ले जाइए। गर्दन की पेशियों को बिलकुल ढीला छोड़कर धीरे-धीरे पीछे की ओर तब-तक झुकते जाइये, जब-तक कि आपके हाथ भूमि पर न टिक जायें। भूमि पर हाथों की उँगलियाँ पैरों की ओर रहेंगी। हाथों को सीधा रखने की कोशिश कीजिये। शरीर का सम्पूर्ण भार हाथों और पैरों पर रहेगा। चित्र सं० ४० को देखिये। इसे चक्रासन कहते हैं।

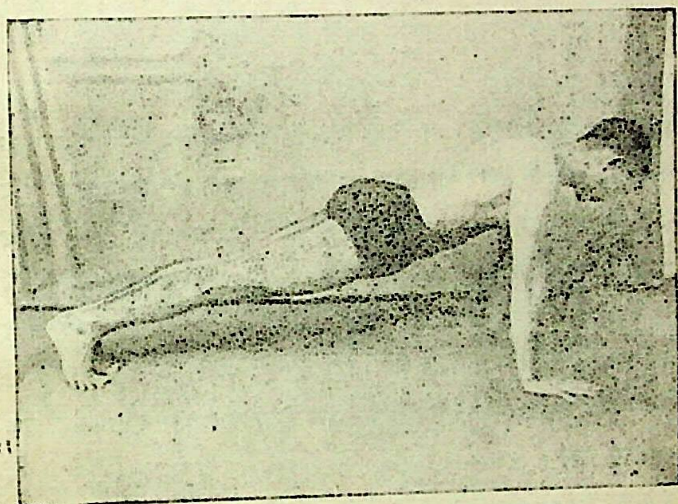


मेरुदण्ड के व्यायाम—चित्र सं० ४१

अभ्यास सं० २—घुटने टेककर एड़ियों के ऊपर अच्छी प्रकार बैठ जाइये। पैर के तलवे ऊपर आकाश की ओर रहेंगे। दोनों घुटने पास-पास मिले रहेंगे। अब हाथों को ऊपर उठाइये। गर्दन की पेशियों को ढीला छोड़कर पीछे झुकिये, जब-तक कि हाथ और सिर भूमि पर भली प्रकार न टिक जायें। हाथों को भूमि पर सिर के ऊपर फैला दीजिये। चित्र सं० ४१ को देखिये। प्रारम्भ में यह अभ्यास कठिन होगा; अतः किसी साथी से घुटने दबवा लीजिए। ताकि पीछे जाने में सरलता रहे। इस अभ्यास को २-३ मास में साधिये। जल्दी से अभ्यास कर डालना अच्छा नहीं, हानि की सम्भावना है। प्रारम्भ में यदि 'अभ्यास न हो पाये, तो कोई चिन्ता नहीं। प्रतिदिन अभ्यास से कालान्तर में वह सिद्ध हो जायगा।

जिन लोगों के शरीर की अवस्थिति (Carriage) में कुबड़ेपन का दोष है, उनके लिए यह अभ्यास अति उपादेय है।

भुजदण्डों का व्यायाम



भुजदण्डों के व्यायाम—चित्र सं० ४२

अभ्यास सं० १—हाथों को भूमि पर छाती की चौड़ाई के अन्तर से टेक दोनों पैरों को मिलाकर पीछे ले जाकर पञ्जों के बल टेक दें। दृष्टि ठीक नीचे भूमि पर रखें। सामान्यावस्था में पीठ धनुषाकार होकर शरीर हाथों और पञ्जों के बल टिक जाता है। इस 'सामान्यावस्था' से दंड की 'आरम्भिक अवस्था' में आने के लिये कमर को नीचा कर हाथों को भूमि पर लम्ब-रूप करें। अर्थात् आपका शरीर भूमि पर एक ऐसा समकोण त्रिभुज बनायेगा, जिसकी दो भुजायें भूमि पर और हाथ समकोण पर होंगे, टाँगें धड़ से मिलने से त्रिभुज का कार्य बनेगा। यह आरम्भिक अवस्था चित्र-सं० ४२ में दिखाई गई है। इस अवस्था की निम्नलिखित विशेषतायें हैं।

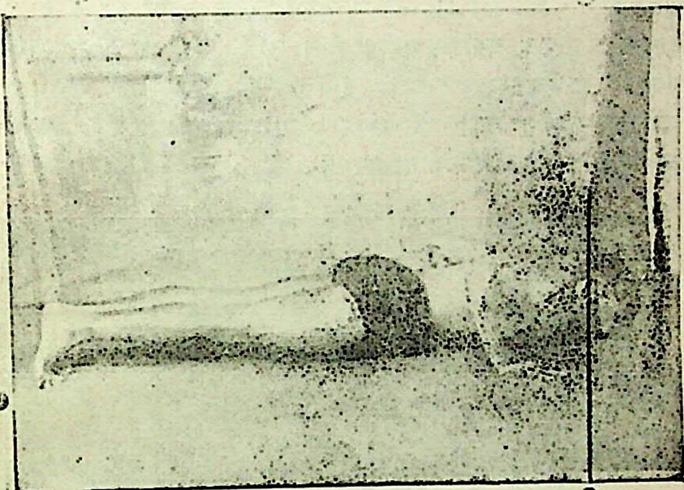
१. एड़ी से लेकर चोटी तक सम्पूर्ण शरीर एक सरल रेखा में है।

२. दृष्टि सीधी नीचे भूमि पर है।

३. हाथ भूमि पर समकोण बनाते हैं।

अब इस अवस्था से नीचे झुकना प्रारम्भ कीजिये। कोहनी मुड़कर शरीर के साथ पार्श्व में लगी रहेगी। आपका शरीर भूमि के समानान्तर हो जायेगा। सम्पूर्ण शरीर का भार पञ्जों और हाथों पर ही रहेगा। शेष शरीर भूमि को कहीं भी स्पर्श नहीं करेगा। यह दण्ड की अवस्था चित्र सं० ४३ में दिखाई गई है। क्षण भर इस अवस्था में रुककर हथेलियों से भूमि को नीचे दबाते हुए 'आरम्भिक अवस्था' में पहुँच जायें। कोहनियाँ इधर-उधर फैलने न पायें। नितम्ब या कन्धे पहले या पीछे न पहुँचें। अर्थात् शरीर ऊपर उठते हुए एक सरल रेखा में कायम रहे। यह एक दण्ड हो गया। एक और करें। फिर आरम्भिक अवस्था (जो तनी हुई है) से 'सामान्यावस्था' (जो शिथिल है) में आ जायें। क्षण भर विश्राम कर 'आरम्भिक अवस्था' में पहुँच कर २ दण्ड फिर करें। पश्चात् विश्राम करने के लिए सामान्यावस्था में आ जायें। इस क्रम से विश्राम करते हुए २५ दण्ड करें। धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाना चाहिए। सामान्य व्यक्ति ४ मास में ५० दण्डों तक पहुँचे। एक वर्ष में १०० तक फिर आगे दण्डों की संख्या न बढ़ाये। व्यायामशील व्यक्ति २०० तक बढ़ा सकता है। पहलवान लोग सामर्थ्यानुसार ५००-५०० तक दंड करते हैं।

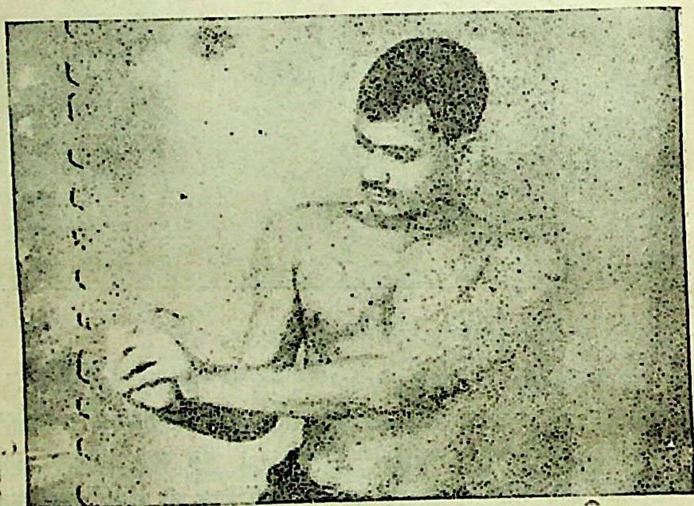
इन दण्डों से भुजा, पीठ, वक्ष का विशेष रूप से तथा अग्रबाहु, गर्दन व पेट का गौण रूप से व्यायाम हो जाता है। इन दंडों को करने वाले की छाती कुछ ही समय में दर्शनीय बन जाती है।



भुजदण्डों के व्यायाम—चित्र सं० ४२

अभ्यास सं० २—बायें पैर को एक फुट आगे बढ़ाकर खड़े हो जायें। दायें पैर पर शरीर का भार मुख्य रूप से रहेगा। अतः यह कुछ-कुछ घुटने से मुड़ जायगा। बायाँ पैर सीधा रखें। अब बायें हाथ की मुट्ठी बाँधकर बायें भुज-मूल के पास लावें। दायें हाथ की हथेली इसकी मुट्ठी के ऊपर रखें। दायें हाथ की कोहनी छाती के आगे रहेगी। बायें हाथ की कोहनी बायीं कोख के पास रहेगी। दृष्टि को बायें हाथ के ऊपर केन्द्रित करें। अब दायें हाथ से बल लगाकर बायें हाथ को सामने फैलने के लिये बाधित करें इसके विपरीत बायें हाथ से इस प्रकार शक्ति लगायें कि वह अपनी इसी अवस्था में रहने का प्रयत्न करे। दोनों हाथों की शक्ति इस अनुपात से खर्च करें कि दायाँ हाथ इस संघर्ष में विजयी हो जाय। अर्थात् बलपूर्वक बायें हाथ को फैला दें। पुनः फैली हुई अवस्था से पूर्वा-वस्था में पहुँचने के लिए बायें हाथ से कन्धे की ओर तथा दायें हाथ से बाहर

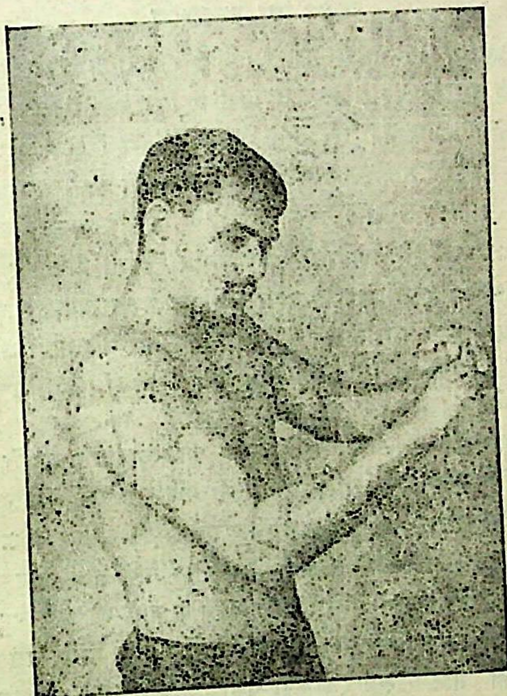
की ओर जोर लगायें। इस बार शक्ति इस हिसाब से खर्च करें कि बायाँ हाथ जीत जाय। अर्थात् पूर्वावस्था में आ जायें। यह एक अभ्यास हो गया। इस प्रकार ३ बार करें। बायें हाथ का व्यायाम हो जाने पर दायें हाथ का व्यायाम। इसी प्रकार ३ बार करें। चित्र सं० ४४ में दायें हाथ का व्यायाम दिखाया गया है।



भुजदण्डों के व्यायाम--चित्र सं० ४४

अभ्यास सं० ३—अभ्यास सं० २ में बायें हाथ की बँधी हुई मुट्ठी की हथेली का रुख नीचे की ओर था। इसी प्रकार दायें हाथ का अभ्यास करते हुए इसकी मुट्ठी की हथेली भी नीचे की ओर, जैसा कि चित्र सं० ४४ से प्रकट है। इस तीसरे अभ्यास को करते हुए बायें हाथ की हथेली को ऊपर की ओर रखें। शेष सब अभ्यास सं० २ के अनुसार है। इस अभ्यास के दायें की हथेली ऊपर रखकर दायें हाथ से भी करें। इससे द्विशिरस्का पेशी का उत्तम व्यायाम होता है। चित्र सं० ४५ देखें।

अभ्यास सं० ४—बायें पैर को एक फुट आगे करके खड़े हो जाइये। दायाँ हाथ कोहनी से मोड़कर कमर पर पीछे रखें। बायें



भुजदण्डों के व्यायाम—चित्र सं० ४५

हाथ की मुट्ठी बन्द करके उसे कोहनी से मोड़कर सामने लायें, जिससे अग्रबाहु भुजा पर समकोण बनायें। बायें हाथ की कोहनी बायीं कोख से सटी रहेगी। बायें हाथ की बँधी हुई मुट्ठी की हथेली भूमि की ओर रहेगी। अब मुट्ठी को नीचे मोड़ें। ऐसा करते हुए इच्छापूर्वक बल लगायें। क्षण भर रुककर मुट्ठी को ताकत लगाते हुए लौटायें और पीछे की ओर जहाँ तक हो सके, मोड़ें।

जब बायें हाथ की अग्रबाहु इस अभ्यास से थक जाय तब यही अभ्यास दायें हाथ से करें।

गर्दन का व्यायाम

अभ्यास सं० १—पैरों को १५ इञ्च चौड़ा कर खड़े हो जाइये। दोनों हाथों की उंगलियां आपस में फसाँकर सिर के पीछे रख लीजिये। दोनों हाथों की कोहनियों की नोकें सामने की ओर निकली रहेंगी। अब मेरुदण्ड को सावधान की स्थिति में रखकर (अर्थात् कहीं से न मोड़ते हुये गर्दन को झुकाकर वक्षोऽस्थि के ऊपर के सिरे पर ठोड़ी को टिका दीजिए। अब गर्दन से इस प्रकार बल लगायें कि वह धीरे-धीरे पीछे को ओर मुड़ जाय। इसके विपरीत दोनों हाथों से ताकत लगाकर गर्दन को आगे की ओर खींचें। शक्ति को इस प्रकार खर्च करें कि हाथों और गर्दन की होड़ (प्रतिद्वन्द्विता) में गर्दन जीत जाय। इस संघर्ष में मेरुदण्ड न झुकने पाये।

अभ्यास सं० २—अभ्यास सं० १ की सावधान स्थिति में खड़े होकर हाथों को सिर के पीछे आपस में फँसाकर रखें। परन्तु गर्दन सीधी रहेगी। अर्थात् प्रथम अभ्यास की तरह ठोड़ी वक्षोस्थि के ऊपर नहीं टिकेगी। अब हाथों की ताकत से गर्दन को नीचे खींचें और गर्दन से पीछे की ओर बल लगायें। हाथों और गर्दन के बलों को इस अनुपात से खर्च करें कि इस बार हाथ विजयी हो। अर्थात् गर्दन विरुद्ध बल लगाती हुई आगे की ओर धीरे-धीरे झुकती चली जाय। यहाँ तक कि ठोड़ी वक्षोऽस्थि के ऊपर आ लगे।

अभ्यास सं० ३—सावधान की स्थिति में खड़े हो जाइये। पैरों में १५ इञ्च का अन्तर हो। दायाँ हाथ कोहनी से मोड़कर कमर पर पीछे रख लें। अब गर्दन दायीं ओर मोड़ लें। अर्थात् दायीं ओर देखें। अब बायें हाथ की हथेली को बायें गाल पर इस प्रकार रखें कि उंगलियाँ कान तक पहुँचें। हथेली का निचला सिरा निचले जबड़े पर हो। गर्दन से बल लगाकर बायीं ओर मोड़ने का प्रयत्न करें। साथ ही बायें हाथ

की हथेली से सिर को दायीं ओर दबाते रहें। इस होड़ में गर्दन जीत जाय; इस अनुपात से बल लगायें। अर्थात् गर्दन बायें हाथ की शक्ति के विरुद्ध बायीं ओर धीरे-धीरे मुड़कर पहुँच जायगी। अब कुछ विश्राम कर पुनः बायें हाथ से धक्का देते हुए गर्दन को दायीं ओर ले जायें। गर्दन बायीं ओर रहने के लिये बल लगाती रहेगी। इस बार बायाँ हाथ जीत जायगा।

यही अवस्था दायें हाथ की हथेली को दायें गाल पर रखकर करें। बायाँ हाथ कोहनी से मोड़कर कमर पर रख लें।

आपके दुश्मन !

"इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हमारे रोगों का मुख्य कारण हमारी पाचन-प्रणाली में ही स्थित है। शरीर की दुर्बलतायें वहीं से उत्पन्न होती हैं। डा०—मुकुन्दस्वरूप वर्मा (मानव-शरीर-रहस्य)

लोगों का ख्याल है कि अजीर्ण (अपचन), अरुचि और कोष्ठबद्धता इतनी तुच्छ बीमारियाँ हैं कि एक मामूली पाचक गोली से इनका सफाया किया जा सकता है। सच तो यह है कि कोई भी बीमारी छोटी नहीं होती। प्रत्येक छोटी कही जाने वाली बीमारी मनुष्य के मूल्यवान् जीवन को समाप्त करने का सामर्थ्य रखती है। फिर उपर्युक्ततीनों बीमारियाँ तो साक्षात् कालरूप हैं। प्रत्येक चिकित्सक इन रोगों की सांघातिकता से परिचित है। 'ये रोग हमारे दरिद्र, अशिक्षित और स्वास्थ्य-विज्ञान-विहीन देश में लगभग सर्वव्यापक बने हुए हैं। ये रोग प्रायः अधिकांश रोगों के आधार बनते हैं। वस्तुतः ये तीनों रोग एक ही हैं। क्योंकि इनका आश्रय पाचन-संस्थान है और तीनों का कारण पाचन-संस्थान पर निर्दयता से किया गया अत्याचार है। अति भोजन करना, असमय में बार-बार खाना, उचित प्रकार का अच्छा सुपच भोजन न करना, मिर्च-मसाले, चाय आदि उत्तेजक पदार्थों का अधिकता से सेवन करना—ये सब बातें पाचन-शक्ति पर अत्याचार ही हैं।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने एक स्थान पर इन रोगों की भयङ्करता दिखाते हुए लिखा है "हम बहुत से विषयी एवं असंयमी पुरुषों को

हृष्ट पुष्ट व लाल देखते हैं, इसके विपरीत तपस्वी, सदाचारी और ब्रह्मचर्य से रहने वाले महात्माओं को क्षीण व निस्तेज पाते हैं। इसका क्या कारण है ? निरीक्षण से ज्ञात होता है कि निरन्तर कब्ज की शिकायत रहने से महात्मा लोगों के चेहरे पर ब्रह्मचर्य तक का प्रभाव नहीं होने पाता।" इससे स्पष्ट है कि कोष्ठबद्धता या कब्ज आदि रोग इतने प्रतापशाली (?) हैं कि इनके आगे ब्रह्मचर्य भी हार मानता है। कब्ज वह रोग है, जो जीवनी शक्ति का स्रोत बन्द कर देता है। शरीर को निरन्तर पोषण की आवश्यकता है। कब्ज के कारण वह पोषण बन्द हो जाता है। इस कारण जीवनी शक्ति निरन्तर क्षीण होती चली जाती है। फलतः व्यायाम आदि सभी साधनों के करते रहने पर भी शरीर विकसित व प्रफुल्लित नहीं होने पाता। इस लिये शारीरिक उन्नति चाहने वालों का सर्वप्रथम यह कर्तव्य है कि वे कब्ज, अजीर्ण और अरुचि से पूर्णतया पीछा छुड़ा लें। ऐसा होने से उन्नति की सड़क साफ व निर्बाध हो जायगी।

अजीर्ण---अधिक मात्रा में भोजन करने, अति जलपान, बार-बार असमय में खाने और मल-मूत्रादि वेगों को रोकने से भोजन आमाशय में बिना पचे ही पड़ा रहता है। इसका नाम अजीर्ण है।

अरुचि—अजीर्ण, कोष्ठबद्धता (कब्ज), आन्त्र व आमाशय आदि की विकृति के कारण भोजन के भक्षण, चिन्तन और सूंघने में जो अनिच्छा होती है, उसका नाम अरुचि है।

कोष्ठबद्धता—पाचक संस्थान के छः कार्य हैं : (१) भोजन को चबाना, (२) रोग-कृमियों से रहित करना, (३) मथकर रासायनिक क्रिया द्वारा घुलनशील और क्षरणशील (Diffusible) बनाना, (४) आहार-रस से आवश्यक तत्त्वों का शोषण करना, (५) जल का शोषण रक्त में मिलाना और (६) महाश्रोतस् की लहरदार गति द्वारा भोजन को आगे बढ़ाना और अन्त में फल्गु को बाहर निकाल देना। इन छः कार्यों में जब बाधा हो जाती है, तब वृहदन्त्र में मल पड़ा-पड़ा सड़ने लगता है। वह बाहर नहीं निकल पाता। इस रुके हुये मल में अधिक सेन्द्रिय विष पैदा हो जाते हैं, जो शोषित होकर रक्त में मिलते हैं। इस

प्रकार शरीर में बहने वाली जीवन की गंगा नदी (रक्त-संस्थान) मैली और विषों से पूरित हो जाती है, जिससे सम्पूर्ण शरीर रोगाक्रान्त हो जाता है। यही कोष्ठबद्धता है।

व्यायामशील तथा स्वास्थ्य चाहने वालों को सावधानी से इस प्रकार की मामूली कही जाने वाली बीमारियों से बचना आवश्यक है। ये व्याधियाँ सामान्य इसलिये कही जा सकती हैं क्योंकि उनका निवारण सरलता से किया जा सकता है। पर मामूली सावधानी से तो ये होंगी ही नहीं।

यहाँ पर कब्ज आदि से बचने के लिये छ अमोघ उपाय दिये जाते हैं। इन नियमों का पालन कर प्रत्येक व्यक्ति अपनी पाचन--शक्ति को स्वस्थ व बलवती रख सकता है। ये नियम अत्यन्त सरल और सादे हैं। तथा इन रोगों से बचने के लिए इन्हीं का आश्रय लेना उचित व प्राकृतिक है। जो लोग बिना विचारे डाक्टरों व वैद्यों के पास इनके इलाज के लिये दौड़े जाते हैं, वे कभी भी इनसे मुक्त नहीं हो पाते। मकड़ी के जाले में एक छोटी कीड़ी के समान ज्यों-ज्यों प्रयत्न करते हैं, और भी फँसते जाते हैं। औषधियों द्वारा भोजन को घोलकर शौच-मार्ग द्वारा बाहर निकाल देने से शरीर को कोई लाभ नहीं होता। इस अप्राकृत क्रियाओं से पाचन-शक्ति पर अनुचित दबाव पड़ता है। वह उत्तरोत्तर कमजोर होती जाती है। पोषण न मिलने के कारण शरीर भी क्षीण होने लगता है। पाचक-रस भी कम और हल्के बनते हैं। अतः प्रकृति के बताये तरीकों का आश्रय लेकर पाचन--शक्ति को इतना बलवान बना देना चाहिये कि रोग का खतरा ही न रहे।

१. दाँतों की चक्की की सफाई--यह चक्की पाचन--संस्थान का आधे से अधिक कार्य कर देती है, इसकी सफाई रखें। इससे पूरा-पूरा काम लेना चाहिये।

२. जैसा कि भोजन के प्रकरण में बताया जा चुका है, भोजन पौष्टिक, सुपच, संतुलित, ताजा और समय पर करना चाहिये। इसके विपरीत करने से शरीर की आमदनी ही रुक जाती है।

३. भोजन करते समय मनुष्य को प्रसन्न व स्वस्थ मनःस्थिति वाला रहना चाहिये। अधिक भोजन करना पाप है। असमय में भोजन करना भी अपने ऊपर अत्याचार है।

४. नियत समय पर शौच अवश्य जाना चाहिये। समय पर ऐसा करने से मल साफ हो जाता है। प्रात.काल उठते ही पहला कार्य यही होना चाहिये। बहुत से लोग चाय-सिगरेट पीते हैं या आलस्यवश रजाई में पड़े रहते हैं, इससे मल-मूत्र रुककर शरीर में जज्ब होने लगता है। जिससे अनेक उत्पात खड़े हो जाते हैं।

५. उष:पान—प्रातःकाल शौच से निवृत्त होकर, दातून कर बिना कुछ खाये एक गिलास ताजा जल पीने का नाम उषःपान है। उष.पान पाचन-प्रणाली को नगर की नालियों की तरह साफ कर देता है। इस तरत हम अन्दर की सफाई कर पाचन-शक्ति को बलवान् बना सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि आभ्यन्तर और बाह्य शारीरिक स्वच्छता स्वास्थ्य प्राप्त करने की प्रथम सीढ़ी है।

जल हमारे शरीर में ७५ प्रतिशत है। रक्त के दस भागों में से नौ भाग जल है। इससे हम जान सकते हैं कि शरीर में जल की कितनी आवश्यकता है। कर्नल मेकरिसन ने अपनी 'फूड' नामक पुस्तक में पानी पीने के विषय में लिखा है—"चाहे प्यास लगे या न लगे, रोज प्रातःकाल और दोनों भोजनों के मध्य में एक या दो गिलास ताजा पानी पीना चाहिए। ऐसा करने से आँतें अपना कार्य ठीक से करने में समर्थ होती हैं। जो लोग अधिक बीमार रहते हैं, उन्हें अधिक जल देना चाहिये।" भोजन करते समय इतना जल नहीं पीना चाहिये जिससे कि पाचक-रस हलके पड़ जायें। अतएव दो भोजनों (दिन तथा रात) के मध्य में जल पीने का विधान किया गया है।

बहुत से लोग नाक द्वारा जल पीते हैं। ग्रसनिका (Pharynx) की स्वच्छता के लिए ऐसा करना लाभदायक है। ग्रसनिका पर नाक, कान, मुख, श्वास-प्रणाली और अन्न-प्रणाली के छिद्र मिलते हैं। अतः

इतने महत्त्वपूर्ण जंकशन की सफाई जल द्वारा आवश्यक है। नाक द्वारा जल पीने का तरीका यह है कि एक कटोरी में पानी लेकर नाक के एक रन्ध्र से लगा लें। दूसरे रन्ध्र को उँगली से बन्द कर लें। पानी को खींचते हुए मुख को खोल रखें। प्रारम्भ का जल मुख द्वारा बाहर गिरा देना चाहिये। फिर पेट के अन्दर भी कुछ जल पहुँचा दें। प्राचीन आचार्यों ने इस क्रिया की अत्यंत प्रशंसा की है :

विगत-घन-निशीथे प्रातरुत्थाय नित्यम्
पिबति खलु नरो यो घ्राणरन्ध्रेण वारि।
स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो,
वलि-पलितविहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तः ॥

"जो व्यक्ति ब्राह्ममुहूर्त में नासा-रन्ध्र से उषःपान करता है, वह बुद्धिमान्, गरुड़ के समान दृष्टिवाला और वार्धक्य (बहरापन) के चिह्नों से रहित होता है।" ज्ञानेन्द्रियों के द्वारों के मिलने के स्थान (ग्रसनिका) की स्वच्छता करने तथा शीतलता पहुँचाने से ऐसे लाभ हों, तो इसमें आश्चर्य क्या ?

शारीरिक व्यायाम विशेषतः पेट के व्यायाम करने से शक्ति का व्यय होता है। यह शक्ति भोजन के पचित पदार्थों (जैसे—शर्करा और वसा) के ओषजन में ज्वलन से प्राप्त होती है। शरीर के आभ्यन्तर कार्यों में भी शक्ति व्यय होती है। इस क्षति को उत्तम भोजन से पूर्ण करने की आवश्यकता होती है। क्षति-पूर्ति के लिए शरीर जब भोजन की माँग करता है, तो हम उसे 'भूख' नाम देते हैं। इसलिये हम यह कह सकते हैं कि व्यायाम से भूख बढ़ती है। शरीर की पाचक और मल-विसर्जक क्रियायें एक-दूसरे पर आश्रित हैं। जैसे शर्करा के ओषजन में ज्वलन होने पर ओषजन का आगमन अर्थात् श्वासकर्म बढ़ जाता है, वैसे ही व्यायाम करने से भूख बढ़ जाती है, भूख बढ़ने से पाचक अङ्ग भोजन को ठीक-ठीक शीघ्र पचाकर फल्गु को बाहर निकालने लगते हैं। वृक्क, त्वचा और फेफड़े भी अपनी सफाई का कार्य तत्परता से करने

लगते हैं। इसलिए व्यायाम न कर के आलसियों की तरह दिन बिताने वालों को कब्ज की शिकायत अवश्य रहने लगती है। कब्ज को दूर करने के लिये व्यायाम अत्यन्त कारगर उपाय है।

उदर के आगे ऐसी कोई अस्थि नहीं है, जो पेट को आगे की ओर लटकने या बढ़ने से रोक सके। पेट के ऊपर उदरच्छदा आदि मांस-पेशियाँ ही पेट की अवस्थिति (Carriage) के बनाये रखती हैं। जब आँतों को, जो कोमल थैलियाँ हैं, बार-बार अधिक भोजन से लादा जाता है और उदरच्छदा आदि पेशियों का व्यायाम नहीं होता है, तो पेट के सम्पूर्ण आन्तरिक अवयव और पेशियाँ ढीली होकर आगे लटक जाती हैं। इसीको तोंद निकलना कहते हैं :

इन कारणों से पाचन-शक्ति को ठीक रखने और उदर पेशियों तथा अवयवों को स्वच्छ व बलवान् बानाये रखने के लिए व्यायाम अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि हमारे जीवन और शारीरिक विकास से पाचन-शक्ति का बहुत अधिक घनिष्ट सम्बन्ध है। अतः पेट के कुछ विशेष व्यायाम यहाँ पर दिये जाते हैं। प्रत्येक वैज्ञानिक व्यायाम-पद्धति में इस प्रकार के व्यायामों का विशेष महत्त्व होता है। क्योंकि शरीर के विकास का पाचन-शक्ति से अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। यहाँ तक कि पाचन-शक्ति के ठीक होने से बहुत लम्बी आयु प्राप्त की जा सकती है। महात्मा गांधी पाचन-शक्ति के महत्व को दृष्टि में रखकर ही "रसना इन्द्रिय" के संयम पर सबसे अधिक जोर देते हैं। "मानव-शरीर-रहस्य' के लेखक डा० मुकुन्द स्वरूप वर्मा ने एक उद्धरण इस सम्बन्ध में दिया है। वे लिखते हैं—"सिमीन नाम के एक सज्जन ने वि० १९७३ में एक पत्र में एक वृद्धा का विवरण प्रकाशित करवाया था। इस वृद्धा की आयु १८० वर्ष की थी। वह अपना गृह-कार्य कर सकती थी। वस्त्र भी सी लेती थी। कमर झुकी हुई थी; परन्तु भली प्रकार चल-फिर सकती थी। उसने कभी शराब नहीं पी। प्रातःकाल उठ जाती थी। उसका मुख्य भोजन जौ की रोटी और मट्ठा था।"

पेट के व्यायामों को देने से पूर्व यहाँ कब्ज-विनाश के लिए कुछ निर्देश आवश्यक हैं। औषधि द्वारा मल साफ करने की कोशिश करने से कभी स्थायी लाभ नहीं हो सकता। तथा औषधियाँ पाचन-संस्थान पर विपरीत असर पैदा करती हैं। उदाहरणार्थ, 'कोलोमोल' एक प्रसिद्ध रेचक औषधि है। यह पारे का एक समास है। जीवनी शक्ति इसको हानिकर विष समझकर बाहर निकालने का उद्योग करती है। इस उद्योग को हम "दस्त साफ होना" कहते हैं। परन्तु परिणाम अत्यन्त हानिकर होता है। इस असाधारण उद्योग के कारण पाचन-शक्ति अत्यन्त निर्बल हो जाती है और बहुत काल तक वह अपना कार्य स्वाभाविक रीति से करने में समर्थ नहीं हो पाती है। "लिक्विड पैराफीन" आदि हल्के रेचकों द्वारा दस्त साफ लाने की आदत भी पूर्ण दोष-युक्त है। इन सब कृत्रिम उपायों से सीधे-सादे प्राकृतिक उपाय लाख गुने अधिक अच्छे हैं। कब्ज हो जाने पर निम्नलिखित प्रकार की दिनचर्या से स्थायी लाभ होता है। यह तरीका स्वाभाविक है।

(क) प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में एक गिलास पानी में नीबू निचोड़कर उष:पान करना चाहिए।

(ख) प्रातः २ मील कम से कम शुद्ध वायु में तेज चाल से भ्रमण करना चाहिए।

(ग) कम से कम २० मिनट तक व्यायाम---विशेषकर पेट का व्यायाम---करना चाहिये

(घ) प्रातराश (सवेरे के नाश्ते) में कुछ फल लेने चाहिये।

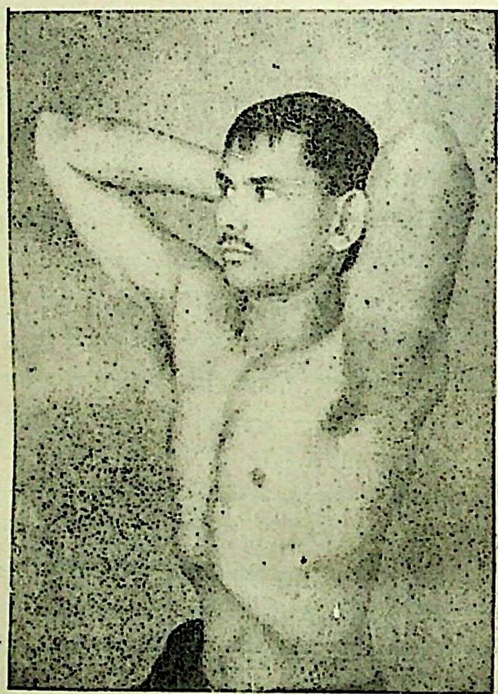
(ङ) दोपहर के भोजन में उबली सब्जियाँ तथा उनका रस्सा खाना चाहिए। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।

(च) तीसरे पहर नमकीन लस्सी या मट्ठा पी सकते हैं।

(छ) सायंकाल इच्छानुसार संतुलित भोजन करना चाहिए। इस समय भी तरकारियाँ और फल अवश्य हों।

इस प्रकार की दिनचर्या सात दिन निभाने से, कब्ज अवश्य ही जाता रहेगा।

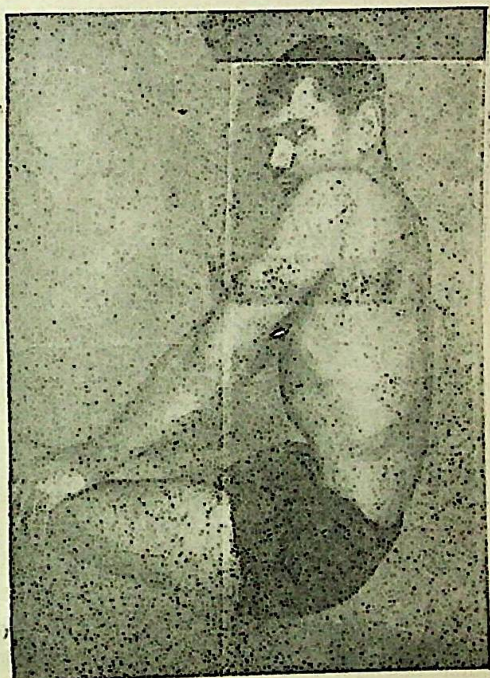
कब्ज-विनाशक पेट के व्यायाम



अभ्यास संख्या १—पैरों को १५ इञ्च चौड़ा कर सीधे खड़े हो जाइये। हथेलियों को सिर के पीछे आपस में मिलाकर चित्र सं० ४६ में दिखाई रीति से बाँध लें। अब बलपूर्वक रेचक करें। अर्थात् श्वास बाहर निकालें। श्वास को बाहर ही रोक लें अर्थात् कुम्भक करें। इच्छा शक्ति के प्रयोग से उदर (पेट) को

कब्ज-विनाशक पेट के अभ्यास—चित्र सं० ४६

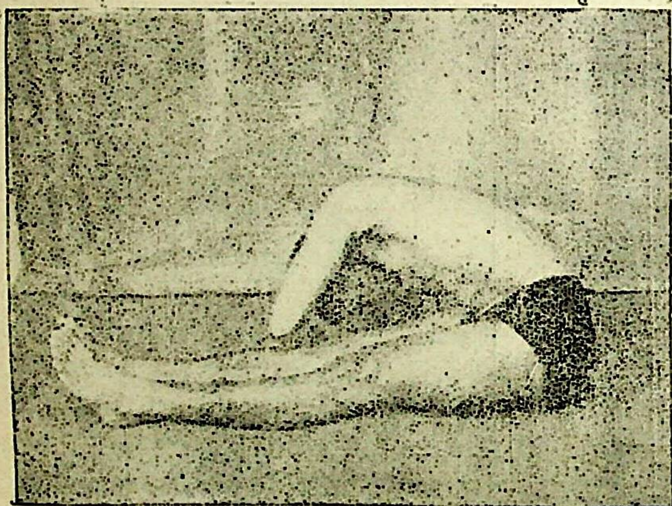
ऊपर और भीतर की ओर जितना खींच सकें, खींचिये। खींचकर इसी अवस्था में जितना रुक सकें, रुकिये। जब और न रुका जा सके, पेट को ढीला छोड़ दें और गहरा श्वास लेकर श्वास—कर्म को सम कीजिये। श्वास—कर्म जब साधारण स्थिति में आ जाय, तब पुनः यही अभ्यास कीजिए। इस प्रकार कम से कम ५ बार करें। इस अभ्यास से वक्ष—गुहा और उदर में स्थित सभी अङ्ग शक्तिशाली होंगे। आँतों पर विशेष दबाव पड़ेगा। वक्षोदर मध्यस्थ पेशी के व्यायाम के लिये भी यह अत्युत्तम है।



कब्ज-विनाशक पेट के अभ्यास—चित्र सं० ४७

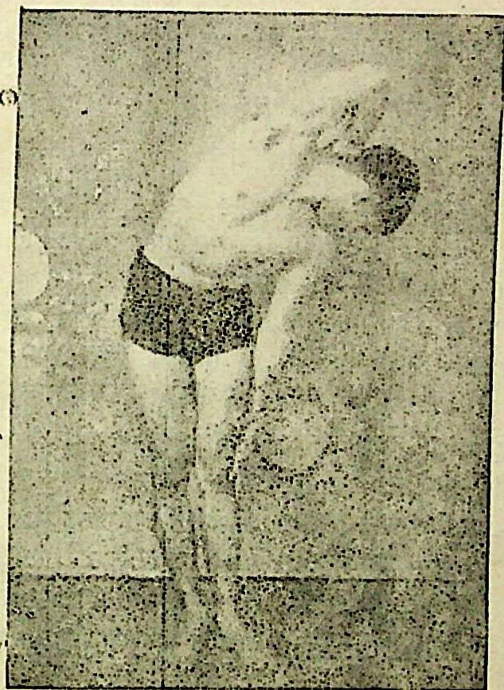
अभ्यास सं० २—यह अभ्यास 'न्योली-क्रिया' के नाम से विख्यात है। दीर्घकाल तक इच्छा शक्ति के प्रयोग का अभ्यास करते रहने से सिद्ध होता है। प्रारम्भ में इस अभ्यास में कुछ सफलता न मिलने पर भी निराश नहीं होना चाहिए। क्योंकि पेट की उन पेशियों को इच्छानुसार काम करने का अभ्यास होने में देर लगती है।

पैरों को १५ इंच चौड़ा कर आगे झुक कर खड़े हो जाइये हाथों को घुटना पर अच्छी तरह टेक लीजिये। बलपूर्वक श्वास को बाहर निकाल कर कुम्भक कीजिये। अर्थात् श्वास को बाहर ही रोके रखें। पेट भीतर खींचने की कोशिश करें। ऐसी इच्छा करने से पेट की पार्श्व की पेशियाँ संकुचित हो जायेंगी। बीच में दो नल-से उभर आयेंगे। इन्हें दायें से बायें या बायें से दायें घुमाने की चेष्टा करें। प्रतिदिन ऐसी चेष्टा करने पर सब होने लगेगा। पेट की पेशियों और आन्त्रों को शक्तिशाली बनाने के लिए यह अचूक व अद्वितीय है। चि० सं० ४७ देखें।



कब्ज-विनाशक पेट के अभ्यास—चित्र सं० ४८

अभ्यास सं० ३—सामने की ओर पैर फैलाकर बैठ जाइये। दोनों पैर सीधे और मिले हुए रखिये। बांया हाथ बायीं ओर नितम्ब के पास भूमि पर टेक लीजिये। दायाँ हाथ भी बायीं ओर बायीं जाँघ के पास शरीर से कुछ दूर टेक लें, जैसा कि चित्र सं० ४८ में दिखाया गया है। दोनों हाथों को कोहनी से झुकाते हुए कमर तक बायीं ओर भूमि पर दोनों हाथों के मध्य में टेकने की कोशिश करें। ऐसा करते हुए दायाँ नितम्ब भूमि से जितना कम उठे, उतना अच्छा है। अभ्यास हो जाने के बाद दोनों पैर भूमि से शुरू से लेकर अन्त तक पूरी तरह मिले रहेंगे। जब माथा टिक जाय तो पूर्वावस्था की "आरम्भिक स्थिति" में आ जायें। यहाँ से दायीं ओर उसी प्रकार झुककर अभ्यास को दुहरायें। पाँच-पाँच बार अभ्यास करना चाहिये।



कब्ज-विनाशक पेट के अभ्यास—चित्र सं० ४९

अभ्यास सं० ४—सीधे सावधान की स्थिति में खड़े हो जाइये। हाथ पार्श्व में लटकते रहेंगे। मुख बाँयी ओर मोड़ लें। दायें हाथ की हथेली गर्दन पर रखें, कोहनी ऊपर निकल जायेगी। अब बायें हाथ को बायें पैर के साथ-साथ नीचे की ओर बढ़ाते हुए बायीं ओर झुकें। कुछ नीचे पहुँचने पर कुछ आगे की ओर झुकें। जब इस प्रकार झुकने लगें तो दृष्टि बायें पैर के गिट्टे पर रखें और श्वास को नीचे जाने के साथ-साथ निकालते जायें। बायीं ओर इतना झुकें कि बायीं तरफ पेट में स्थित अवयवों पर पूरा दबाव पड़े। यह स्थिति चित्र में ऊपर दिखाई गई है।

उत्तम स्वास्थ्य की निशानी मीठी नींद

हम यह कह चुके हैं कि शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य को प्राप्त करने व स्थिर रखने के लिए निम्न वस्तुओं की उचित रीति से आवश्यकता है। ये वस्तुएँ वायु, जल, व्यायाम, सूर्य का प्रकाश, भोजन, निद्रा (विश्राम) और ब्रह्मचर्य हैं।

व्यायाम की कमी से शरीर भद्दा और लपलपा हो जाता है और मांस-पेशियों की स्वाभाविक संकोच व प्रसार की शक्ति भी कम हो जाती है। इसका मतलब यह कि बल कम हो जाता है। शरीर का यह स्वभाव है कि जिस अंग या अवयव से काम नहीं लिया जाता, वह अविकसित ही रह जाता है। मांस-पेशियों की तरह ही यदि बुद्धि को स्वाध्याय आदि का अवसर न मिले तो वह भी अपनी कुल-मर्यादा तक शक्तिशाली नहीं हो सकती। इसके विपरीत यदि थके हुए अवयवों को उचित विश्राम न दिया जाय तो वे क्षीण होकर नष्ट हो जायँगे। कार्य करने से पेशियों में जो कमी हो जाती है, उसकी पूर्ति विश्राम द्वारा ही हो सकती है। प्राकृतिक विश्राम करने की सर्वोत्तम अवस्था निद्रा ही है। निद्रा हमारे लिए प्रकृति की मूल्यवान् देन है। गहरी मीठी नींद के बाद हम किस प्रकार शक्ति व स्फूर्ति-सम्पन्न हो जाते हैं, यह कम महत्त्व की बात नहीं है।

मीठी नींद के लिए निम्न बातों का होना आवश्यक है। (१) अन्धकार, (२) शान्त, स्तब्ध वातावरण, (३) सुखद हवादार शयन-कक्ष और (४) न अधिक सर्दी, न अधिक गर्मी।

अन्धकार के कारण दिन की अपेक्षा रात्रि को अधिक अच्छी नींद आती है। शान्त वातावरण भी रात्रि को ही मिलता है। दिनभर मनुष्य भली प्रकार काम करके थक जाता है। बाद में उसे रात्रि में ही स्फूर्ति-दायिनी नींद मिल सकती है। रात्रि-जागरण करके दूषित जीवन बिताने का रिवाज बढ़ता जा रहा है। हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि

रात्रि की निद्रा में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित कर हमने प्रकृति के अक्षय भण्डार के अमूल्य प्रसाद से अपने को वञ्चित कर दिया है। रात्रि में अधिक जागरण स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त हानिकर है। इस आदत को किसी प्रकार भी स्वस्थ जीवन का अङ्ग नहीं माना जा सकता। यह सभ्यता भले ही प्रगतिशील हो, पर मानवीय नहीं। इसे आसुरी सभ्यता कही जा सकती है। इसलिए स्वस्थ जीवन के प्रशंसकों के लिए जल्द से जल्द सोना और जल्द उठना—"Early to bed and early torise" का सिद्धान्त परम लाभकर है। इस नियम को बुद्धिमानों ने "सोनें का नियम" नाम दिया है।

सोने का कमरा खुला हवादार होना चाहिये। क्योंकि ताजी वायु प्राण है। सोते हुए हमें निरन्तर स्वच्छ ताजी वायु मिलती रहनी चाहिये। कई लोग मुह ढंक कर सोते हैं। यह आदत स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकार है। फेफड़ों से निकली हुई दूषित वायु अन्दर ही अन्दर जमा होती रहती है। उसी वायु को पुनः पुनः ग्रहण कर उसे अधिकाधिक दूषित किया जाता है। जिनकी आदत इस प्रकार सोने की है, उन्हें कभी भी निद्रा के बाद प्रफुल्लता और नवचेतना प्राप्त नहीं होती। क्योंकि हमारे शरीर का प्रत्येक कोष जो प्रोटोप्लाज्म का बना हुआ है, निरन्तर स्वच्छ ओषजन की प्राप्ति के बिना मुर्झा जाता है। कोमल बिस्तरों की अपेक्षा कुछ कड़े बिस्तरे अधिक लाभकर हैं। ब्रह्मचर्य की दृष्टि से तो कड़े बिस्तरों का होना आवश्यक ही है।

बहुत से घरों में एक ही बिस्तर पर दो या अधिक व्यक्तियो के सोने का रिवाज है। स्वास्थ्य की दृष्टि से यह हानिकर है। बच्चों को पास की दूसरी छोटी चारपाई पर सुलाने का प्रबन्ध करना चाहिये। पति-पत्नी को भी एक बिस्तर पर नहीं सोना चाहिये। कमरे का तापमान सुखद होना चाहिये। न अधिक गरम, न अधिक ठण्ढा। सोते समय लैम्प तथा तापने की अंगीठी आदि भी अवश्य हटा देनी चाहिये।

सोने से पूर्व भोजन करना अच्छा है। खाली पेट नींद नहीं आती। भोजन से आने वाली तन्द्रा नींद में सहायक है। निरन्तर काम करने वाले हृदय आदि अवयवों को पोषण की भी आवश्यकता रहती है। सोने के ठीक पहले डटकर भोजन करना उचित नहीं है। क्योंकि आमाशय और हृदय एक ही पार्श्व में पास-पास वायीं ओर स्थित हैं। अधिक भोजन से भरा आमाशय हृदय को कार्य करने में वाधा पहुँचायेगा।

जो लोग नियमित रूप से अधिक भोजन करके बायीं ओर सो जाते हैं, उन्हें हृदय की कठिन बीमारियाँ हो सकती हैं। अतः भोजन के बाद रात्रि को वायीं करवट नहीं सोना चाहिये। दायीं करवट सोने की आदत अच्छी है।

बच्चों को अधिक नींद की आवश्यता है। क्योंकि उसमें प्राण-प्रक्रिया (निर्माणकारी क्रिया) तीव्रता से होती है। तथा वे शीघ्र थक भी जाते हैं। व्यायामशील व्यक्तियों को भी पर्याप्त निद्रा लेनी चाहिये। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वे आलसियों की तरह दिन चढ़े तक सोते रहें। अपितु सायंकाल ८ वजे ही सो जाना चाहिये। बच्चों को कम-से-कम १६ घण्टे तक की नींद की आवश्यकता है। १०-१२ वर्ष के बच्चों के लिये १०-११ घण्टे काफी हैं। वयस्क स्त्री-पुरुषों के लिये ७-८ घण्टे की नींद आवश्यक है।

माँस-पेशियों में कार्य करने से दूषित पदार्थों की उत्पत्ति होती है। अतः थकान अनुभव होने लगती है। थकान का दूसरा कारण यह होता है कि उन्हें उचित पोषण प्राप्त नहीं होता। उचित पोषण तथा रक्त-सञ्चार द्वारा दूषित पदार्थों को बहा देने से थकान दूर हो जाती है। निद्रा के समय इसी प्रकार थकान दूर होकर शरीर में नई शक्ति का सञ्चार होता है।

परीक्षणों से सिद्ध होता है कि पेशियों के थकने से मस्तिष्क भी थकान मानता है। पेशियों के यहाँ से दूषित पदार्थों "सारको लैक्टिक

एसिड" आदि से युक्त होकर, रक्त जब मस्तिष्क में पहुँचता है तो वह वहाँ भी थकान की अनुभूति पैदा करता है। मस्तिष्क की इसी थकान का प्रभाव शरीर पर पड़ता है, परन्तु उचित यह है कि शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के श्रम को बारी-बारी से करके सुस्ताना चाहिये। और अन्त में निद्रा लेनी चाहिये।

थकान को दूर करने के लिए मालिश एक उत्तम साधन है। इसका सिद्धान्त यह है कि दूषित पदार्थों को रक्त-सञ्चार के साथ प्रेरित कर बहा देना। मालिश करते समय तेलों का प्रयोग भी अच्छा रहता है। इससे मालिश करने वाले का हाथ आसानी से शरीर पर फिसलता है तथा आनन्दवर्धक रक्ताभिसरण के साथ-साथ त्वचा को पोषण प्राप्त होता है। त्वचा में तैल को शोषित करने का गुण विद्यमान् है। जब तेल उस पर रगड़ा जाता है तो वह जज्ब हो जाता है। इस प्रकार त्वचा स्वस्थ होती है, उसमें चिकनापन आता है और ओज व कान्ति की वृद्धि होती है। भारतीय व्यायाम-पद्धति का तेल-मालिश आवश्यक अङ्ग है। अपने देश में तेल-मालिश का सम्भवतः सबसे अधिक रिवाज है। तेल-मालिश करके व्यायाम करना और भी अधिक अच्छा है। इससे त्वचा कोमल हो जाती है। और ऊपरी पृष्ठ तक रक्ताभिसरण भली प्रकार होता है। अतएव भारतीय पहलवानों की त्वचा खूब अधिक कान्तिवान नजर आती है। अखाड़े की मिट्टी त्वचा के लिये संसार के सबसे कीमती साबुनों से अधिक लाभकर है। भारतीय पहलवान इसीलिए अखाड़े की मिट्टी को बहुत अधिक महत्त्व प्रदान करते हैं। उसमें तेल, घी, गेरु और मट्ठा मिलाया जाता है। जो लोग कुश्ती के शौकीन नहीं हैं, उन्हें भी इस प्रकार के "सुसज्जित" अखाड़े की मिट्टी में लोटना चाहिये।

अपने आप तेल मालिश करने से व्यायाम हो जाता है। इस मालिश का उद्देश्य त्वचा को तेल पहुँचाना है। सप्ताह में एक दिन मालिश किसी दूसरे व्यक्ति से करानी चाहिये। हमारे देश के पहलवान सप्ताह में एक

दिन इस कार्य के लिये रखते हैं। इससे सप्ताह भर की थकान निकल जाती है। यह मालिश, जो थकान को दूर करने के लिए की जाती है, लेटकर करवानी चाहिये। ऐसा करने से हृदय को और भी अधिक आराम मिलता है।

तेल मालिश व अखाड़े की मिट्टी से स्नान के बाद विश्राम कर ताजे स्वच्छ जल से स्नान करना चाहिये। आजकल साबुनों का चलन अधिक है। त्वचा पर से तेल व मिट्टी हटाने के लिए उत्तम प्रकार के साबुनों का ही प्रयोग करना चाहिये। घटिया दर्जे के बाजारू साबुन त्वचा पर विरुद्ध असर भी कर सकते हैं। व्यायाम और मालिश के बाद त्वचा के रोम-कूपों की सर्वथा सफाई करनी आवश्यक है। परन्तु यह कार्य इस प्रकार होना चाहिये कि त्वचा को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे। सर्वोत्तम सौम्य तरीका उबटन का है। हल्दी, बेसन तथा तेल को मिलाकर उबटन किया जाता है। इससे निःसन्देह कान्ति, ओज की वृद्धि होती है। सौन्दर्य बढ़ाने का यह अमोघ नुस्खा है। मनुष्य-जाति का सौन्दर्य बढ़े, ऐसा प्रयत्न करना प्रत्येक का धर्म है। परन्तु गलत और कृत्रिम साधनों—जैसे पाउडर आदि—से सौन्दर्य बनाने की कोशिश करना केवल विला-सिता बढ़ाना है, जो कि किसी भी अवस्था में वाञ्छनीय नहीं है।

उबटन के बाद साबुन के स्थान पर बेसन से शरीर धो डालना बहुत अच्छा है। इससे त्वचा पर किसी प्रकार का हानिकर प्रभाव नहीं हो पाता। बेसन से धुली त्वचा पूर्णतया साफ होकर मक्खन की तरह कोमल व स्निग्ध निकल आती है। हमारी समझ में साबुनों के स्थान पर यह प्रयोग अधिक अच्छा है। कभी-कभी साबुन का प्रयोग कर लिया जाय तो कोई हानि नहीं है।

हमारे देश में सूर्य को एक देवता माना गया है। जो दिव्य गुणों से युक्त हो, उसे देवता कहते हैं। सूर्य का सबसे महत्त्वपूर्ण दिव्य गुण यह है कि वह पृथ्वी पर जीवन का प्रदाता है। मनुष्य, वनस्पति और पशुओं

द्वारा प्रस्तुत पदार्थों पर जीवित है। इसी तरह पशु भी वनस्पति या वनस्पति खाने वाले पशुओं से ही अपना भोजन प्राप्त करते हैं। वनस्पतियाँ हमारे लिए भूमि और वायु में से कार्बोज, प्रश्यामीन, वसा, लवण और खाद्योज प्रस्तुत करते हैं। वनस्पतियाँ यह कार्य सूर्य-किरणों की उनके पत्तों पर हुई क्रिया के प्रभाव से करने में समर्थ हैं। यदि सूर्य का प्रकाश न मिले तो कोई वनस्पति पैदा न हो। इसके अतिरिक्त सूर्य-किरणों की सहायता से वनस्पतियों के पत्ते एक और भी महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। कार्बोनिक एसिड नामक दूषित वायु को प्राणिमात्र प्रश्वास द्वारा वायुमण्डल में मिलाता रहता है। वनस्पतियों की पत्तियाँ कार्बोनिक एसिड को ग्रहण कर उसमें से कार्बन को रख लेती हैं और ओषजन मुक्त कर वायुमण्डल में मिला देती हैं। इस प्रकार सूर्य की शक्ति से ही वायुमण्डल पुनःपुनः शुद्ध होता रहता है। इन गुणों के कारण ही सूर्य को देवता कहा गया है।

सूर्य भगवान् कृमि-विनाशक भी हैं। बहुत से रोग-कृमि सूर्य के प्रकाश से नष्ट हो जाते हैं। इसीलिये बिस्तरों तथा अन्य कपड़ों को यदा-कदा धूप में सुखाते रहने से बड़ा लाभ है। जो वस्त्र जल्दी-जल्दी धोये नहीं जा सकते, उन्हें तो अवश्य ही समय-समय पर सुखाते रहना चाहिये। सूर्य की किरणें यदि सीधे हमारे शरीर पर पड़ें, तो त्वचा पर खाद्योज "डी" पैदा होता है। जो कि अस्थियों को पुष्ट करता है। अतः तेल मालिश करके प्रातःकाल की सुखद धूप में व्यायाम किया जावे तो अत्यन्त लाभ होता है। इससे रक्त, फेफड़ों और वातस्नायुओं को स्वास्थ्यप्रद उत्तेजना मिलती है। तथा बल-पौरुष की भी निःसन्देह वृद्धि होती है। शीतकाल में नियमित रूप से धूप-स्नान करने का अत्यधिक महत्त्व है। सूर्य की अदृश्य किरणें हमारे शरीर पर चमत्कारी प्रभाव डालती हैं।

इस दृष्टि से 'सूर्य-नमस्कार' की व्यायाम-पद्धति, जो हमारे देश में बहु-प्रचलित है, अत्युत्तम है। सूर्यदेव से इस प्रकार व्यायाम-द्वारा की गई सच्ची प्रार्थना (मौखिक प्रार्थना का कोई मूल्य नहीं होता) वरदान देने वाली है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इस पुस्तक में वर्णित व्यायामों को

सुखद सूर्य की प्रातःकालीन किरणों में किया जायगा तो एक-एक किरण हमारे शरीर में अक्षय शक्ति स्रोत को पैदा करनेवाली होगी। सूर्य की अदृश्य अल्ट्रा वॉयलेट किरणों के स्वास्थ्य-सम्बन्धी लाभ को दृष्टि में रख कर ही उन्नत देशों में" सूर्यरश्मि—स्नानशालाओं" की खूब वृद्धि हुई है।

आजकल कई दुर्व्यसन बहुतायत से फैलते जा रहे हैं। इसका कारण यह है कि अच्छाई की अपेक्षा बुराई शीघ्रता से फैलती है। अथवा विचित्र-विचित्र प्रकार के कार्यों की गणना फैशन में की जाने लगी है। सिगरेट और चाय इसी प्रकार के दुर्व्यसन हैं। हृदय पर बुरा प्रभाव पड़ने से शरीर के सम्यक् विकास में बाधा होती है। चाय के स्थान पर लस्सी या छाछ का प्रयोग वाञ्छनीय है। दुर्व्यसनों की अच्छी-खासी पहचान यह है कि एक बार सेवन करने पर उसका न समाप्त होनेवाला सिलसिला पड़ जाता है। चाय के विषय में भी यही कहा जा सकता है। लोगबाग चौबीस घण्टे ओठों से प्याला लगाये रहते हैं। कहने के लिए यह ताजगी देती है, परन्तु वस्तुतः यह उत्तेजक होने के कारण अन्त में शरीर को क्षीण करने वाली है। चाय से भूख भी कम हो जाती है। भारत के प्रान्तीय भोजनों के द्वारा बहुत से परीक्षण किये गये। उनसे यह परिणाम निकला कि सिक्खों का भोजन सबसे अधिक पुष्टिकारक है। इसका कारण यह है कि सिक्ख लोग लस्सी का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में करते हैं। यदि बहु-विज्ञापित चाय में कोई विशेषता होती तो अवश्य ही सिक्खों के स्थान पर गुजरात के "चाय-सेवी समाज" का नाम होता। अतः हम आग्रहपूर्वक कहेंगे कि चाय के स्थान पर लोगों को अपने परिवारों में छाछ या लस्सी का चलन करना चाहिये।

भोजन को बिना चबाये निगल जाने से हमारे शरीर का पोषण नहीं हो सकता। इसका निर्देश पहले किया जा चुका है। इस सम्बन्ध में दांतों का महत्त्व स्पष्ट है। बिना अच्छे दांतों के भोजन नहीं चबाया जा सकता और बिना चबाये गये भोजन का पाचन सम्भव नहीं। अपचित भोजन शरीर का अङ्ग नहीं बन सकता। परिणामतः

सम्पूर्ण स्वास्थ्य खराब होगा और शरीर का विकास सम्भव नहीं है। अतः दाँतों की रक्षा के लिए पूर्ण ध्यान देना अत्यावश्यक है।

दाँतों में प्रायः मुख्य रूप से दो बीमारियाँ होती हैं (१) दाँतों का असमय में गिर जाना (२) मसूढ़ों में पीब पड़ना (दन्तपूय)।

प्रथम बीमारी का कारण यह है कि हानिकर कृमि दाँतों में लग जाते हैं, जो उनकी जड़ें खोद डालते हैं। ये दुष्ट कृमि अम्लीय परिस्थिति में काम कर सकते हैं। मुख की अवस्था साधारण स्थिति में क्षारीय है। भोजन के कण दाँतों के मध्य में रह जाते हैं, जो सड़ने लगते हैं सड़ाँध से अम्ल उत्पन्न हो जाता है। फलतः मुख में रहने वाले कृमि अनुकूल अवसर पाकर दाँतों का विनाश करते हैं।

दूसरी बीमारी पायरिया या दन्तपूय के नाम से विख्यात है। यह अधिकता से पायी जाती है। इसका इलाज अत्यन्त कठिन है। जिन लोगों को एक बार पायरिया हो जाता है, उनका स्वास्थ्य उत्तरोत्तर खराब ही होता जाता है। क्योंकि पस तथा अन्य विष भोजन के ग्रास से मिलकर पेट में जाते हैं, जो पाचन-शक्ति को खराब करते हैं। थूक में एक प्रकार का पदार्थ होता है, जिसे टारटार कहते हैं। यह दाँतों पर पीला-पीला जम जाता है। आम लोगों की दृष्टि में यह हानि-रहित वस्तु है, परन्तु सत्य यह है कि मसूढ़ों के शोथ का अधिकतर यही कारण होता है। मसूढ़ों में कुछ समय तक शोथ रहने से उसमें पस पड़ जाती है, जो कि लापरवाही से स्थिरता का रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार पायरिया नाम की बीमारी अपनी जड़ जमा लेती है।

ऊपर के विवरण से यह बात स्पष्ट है कि दाँतों और मसूढ़ों की बीमारी का अस्वच्छता ही एकमात्र कारण है। यदि हम प्रतिदिन दातून, ब्रश द्वारा मुख की सफाई रखें, तो उत्पात के मूल भोजन-कण और टार-टार दोनों में से एक भी न रहने पायेगा। रात्रि को सोने से पूर्व मुख की सफाई भली प्रकार करनी चाहिये, क्योंकि भोजन के छोटे कण यदि रात्रि के दीर्घ शान्ति-काल में मुख में पड़े रहेंगे तो अवश्य सड़ेंगे। ब्रश

और दातुन इन दोनों का प्रयोग अच्छा है। प्रतिदिन प्रातः दातुन को चबाने से दाढ़ों का व्यायाम होता है, जिससे वे दृढ़ हो जाती हैं। दांत के बहुत से सन्धि-स्थलों पर दातुन भली प्रकार स्वच्छता नहीं कर सकता। इस स्थान के लिये ब्रश का उपयोग करना चाहिये। भारत में नीम प्रायः सर्वत्र मिलता है। अपने कृमि-नाशक गुण के कारण नीम की दातुन सर्वोत्तम है। कोकर या बबूल की दातुन भी उत्तम है।

स्त्री-पुरुषों की अवस्थानुसार व्यायाम

"प्रत्येक व्यक्ति को इतना ज्ञान होना चाहिये अथवा व्यायाम सम्बन्धी परामर्शों को समझने की योग्यता होनी चाहिये कि वह निश्चित कर सके कि उसकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं तथा सामयिक परिस्थितियों में, उसके लिए किस प्रकार का व्यायाम सर्वथा उपयुक्त है। ये आवश्यकतायें आयु तथा वैयक्तिक स्वभाव के अनुसार बदलती रहती हैं।"

—एफ. डब्ल्यू. ग्रिफिन, एम. ए. एम. डी.

व्यायाम के शिक्षण में आयु, स्त्री-पुरुष Sex का भेद और व्यक्ति की शारीरिक योग्यता का पूर्णतया ध्यान रखना चाहिये। यदि इसके बिना किसी व्यायाम-पद्धति का अवलम्बन किया जायगा तो पूरी हानि होने की सम्भावना है।

व्यक्ति की शारीरिक योग्यता या क्षमता—कई बच्चे या व्यक्ति अपनी आयु के अनुसार शारीरिक विकास को नहीं प्राप्त होते। उनकी शारीरिक क्षमता कम आयु के व्यक्तियों के समान होती है। इसका कारण अस्वास्थ्यकर आदतें व परिस्थितियाँ हैं। ऐसे आयु के अनुपात से दुर्बल व्यक्ति को व्यायाम लाभ नहीं पहुँचा सकते हैं, जो उस आयु के व्यक्तियों के लिए निर्धारित किये गये हैं।

स्त्री-पुरुष का भेद—स्त्री-पुरुष के शरीर की रचना भिन्न है। तथा प्रसव जैसी महत्त्वपूर्ण परिस्थितियों के कारण स्त्रियों के लिये अलग व्यायामों की आवश्यकता है।

आयु—आयु के अनुसार भी शरीर की विभिन्न स्थितियाँ होती हैं। तदनुकूल व्यायाम का विधान ही लाभकर हो सकता है। १८ वर्ष के युवक तथा ६० वर्ष के प्रौढ़ व्यक्ति के लिये एक जैसे व्यायामों की आवश्यकता नहीं है।

इस अध्याय में हम इन तीन बातों को दृष्टि में रखकर व्यायाम-सम्बन्धी निर्देश देना चाहते हैं। इसके लिये आयु के विभाग किये गये हैं। आयु के अनुसार आम व्यक्ति किस परिस्थिति में होता है, इसका भी ध्यान रखा गया है।

छ वर्ष से नौ वर्ष तक

इस आयु में बच्चा विद्यालय जाना प्रारम्भ करता है, जहाँ पर उसे प्रतिदिन देर तक बैठकर काम करना होता है। सामान्यतः भारत के अधिकांश विद्यालयों में इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है कि बच्चे किस ढंग से दिनभर बैठे रहते हैं। यह बात सर्वसम्मत है कि बैठने तथा लिखने-पढ़ने के गलत तरीके शरीर की 'अवस्थिति' (Posture) पर बहुत बुरा प्रभाव डालते हैं। हमारा शरीर एक नाजुक डिब्बा है, जिसमें हृदय, फेफड़े और वृक्क जैसे मूल्यवान अङ्ग रखे हैं। यदि यह शरीर-रूपी डिब्बा टेढ़ा-मेढ़ा रखा जायगा तो अवश्य ही आन्तरिक अवयवों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। शरीर की गलत "अवस्थिति" (Posture) से हृदय की धड़कन, रक्त-संञ्चार, श्वास-प्रश्वास और पाचन-क्रिया पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः ऐसी स्थिति में शरीर का स्वाभाविक विकास कैसे हो सकता है? इन बातों की उपेक्षा करने से अधिकतर विद्यार्थियों की शारीरिक अवस्थिति (Physical Posture) बहुत खराब पाई जाती है। उदाहरण के लिये छाती का आगे झुकना, कन्धों का आगे झुककर पीठ को गोल-सा बना देना और पेड़ू पर दबाव पड़कर आगे निकल आना आदि। साथ ही आन्तरिक क्रियायें—यथा—पाचन आदि भी ठीक प्रकार नहीं हो पातीं।

यह बात भलीभाँति जान लेनी चाहिये कि शारीरिक अवस्थिति, मेरुदण्ड, छाती का पूर्णतया पुष्ट होना और श्वास-प्रश्वास का अत्यधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः इस आयु में बच्चों को ठीक प्रकार बैठने तथा उचित रीति से चलने की शिक्षा देनी चाहिये। विद्यालय की डेस्कों को भी अनुकूल बनवाना चाहिये। बच्चों के मन में यह बात बैठा देनी चाहिये कि शारीरिक उन्नति का मूल उनके शरीर के ठीक ढाँचे (अवस्थिति) पर है। इस दिशा में इतना अधिक प्रयत्न करना चाहिये कि बच्चों को ठीक बैठने व ठीक चलने की 'आदत' बन जाय।

इस आयु के बच्चों के लिये मनोरञ्जक सामूहिक खेलों का, जो खुले मैदान के हों, आयोजन करना चाहिये। बच्चों को अधिक नींद की आवश्यकता होती है। अतः शारीरिक व्यायाम तथा विश्राम के समन्वय की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

नौ वर्ष से बारह वर्ष तक

इस आयु के पढ़ने वाले बच्चों के लिये प्रतिदिन मैदान के खेलों में कम-से-कम एक घण्टा आवश्यक है। दौड़ना, कूदना तथा फेंकने के व्यायामों की अधिक उपयोगिता है। क्योंकि हृदय, फेफड़े, मांस-पेशियाँ और वात-संस्थान (Nervous System) के विकास के लिये उक्त प्रकार के व्यायामों का महत्त्व इस आयु में अधिक है। चातुर्य-साधन वाले अत्यन्त सरल व्यायाम भी सप्ताह में दो दिन रखे जा सकते हैं। ठीक शारीरिक अवस्थिति को बनाने वाली आदतों की ओर निरन्तर ध्यान रहना ही चाहिये।

बारह वर्ष से पन्द्रह वर्ष तक

लड़के—यह तारुण्य-आगमन के पहले का समय है। इस अवस्था में हृदय और फेफड़ों का विकास शीघ्रता से होता है, जब कि रक्तवाहिनियों का अपेक्षाकृत कम। इस दृष्टिकोण से दौड़ना तथा हाकी-फुटबाल जैसे खेल लाभकर हैं। ग्रीष्म-ऋतु में तैरने का व्यायाम अनुकूल रहता है। पुस्तक

में बताये नियमों के आधार पर प्राणायाम का ठीक-ठीक अभ्यास अत्यावश्यक है। बहुत से लड़कों की आदत गलत तरीके से श्वास लेने की होती है। खेलते समय मुख खुला रखने की आदत सख्ती के साथ वन्द कर देनी चाहिये। उत्तम शारीरिक अवस्थिति (posture) प्राप्त करने के लिये मांस-पेशियों को दृढ़ करने वाले व्यायामों को भी प्रारम्भ करना चाहिये—जैसे पेरलेल वार (चतुष्काण्ड) और मोर बनना (Vaulting) आदि।

लड़कियाँ—१४ वर्ष के लगभग लड़कियों में तारुण्य के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। इससे स्पष्ट है कि इसी आयु से लड़के-लड़कियों के व्यायामों का दृष्टिकोण बदल जाना चाहिये। परन्तु यह ख्याल करना कि लड़कियों को या युवतियों को व्यायाम—उनकी मातृत्व की शक्ति के आधार पर—हानिकर होगा, या भावी गृहस्थ-जीवन में माता के कर्तव्यों को निभाने के लिए अनुपयुक्त होगा, सर्वथा मिथ्या है। इसके विपरीत, व्यायाम न करने से स्त्रियों का शरीर स्त्री-धर्म निभाने में अयोग्य ठहरता है। देहात की स्त्रियाँ शारीरिक श्रम करने के कारण ही शहर की स्त्रियों की अपेक्षा प्रसव-काल में अधिक सुविधा का अनुभव करती हैं। प्रसव-काल के कष्टों के वर्णन के प्रसंग में डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा "मानव-शरीर-रहस्य" में लिखते हैं—"जो स्त्रियाँ व्यायाम इत्यादि विलकुल नहीं करतीं, पलंग पर पड़े-पड़े आमोद-प्रमोद में ही जिनका समय जाता है, उनको ये कष्ट अधिक होते हैं।"—इंगलैण्ड की प्रसिद्ध स्त्री-व्यायाम-शिक्षिका श्रीमती वैगट स्टैक अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "Building the Body beautiful" में स्त्रियों के व्यायाम का जोरदार शब्दों में समर्थन करती हैं—"स्त्रियाँ ही संसार की नस्ल को बनानेवाली हैं। उन्हीं के द्वारा मानव-शरीर का पूर्ण विकसित रूप में निर्माण होता है। इस दिशा में वे ही भविष्य की रूपरेखाकार हैं।......क्या हम वर्तमान समय की स्त्रियाँ ग्रीक लोगों के आदर्श तक नहीं पहुँच सकतीं? जिनके ऊपर संसार के

बच्चों का निर्माण बचपन से ही होता है? क्या हम स्वतः उद्यम कर प्रथम अपने शरीर को स्वस्थ बनाकर एक निश्चित योजना के आधार पर स्वास्थ्य और सौन्दर्य के नवीन संसार का निर्माण नहीं कर सकतीं ?"

इसी प्रकार विख्यात जर्मन व्यायाम-शिक्षिका एलिस ब्लांक की पुस्तक "The body Building" (Physical Culture for women) के अंग्रेजी भाषान्तरकार उसकी भूमिका में व्यायाम द्वारा स्त्रियों के स्वास्थ्य और सौन्दर्य-प्राप्ति में विश्वास प्रकट करते हैं— "इसका (व्यायाम का) उद्देश्य स्त्रियों के शरीर को स्वास्थ्य, सौन्दर्य और क्षमता प्राप्त कराना है। आज के संघर्षमय युग में हमें स्वस्थ व्यक्तियों विशेषकर स्वस्थ माताओं की आवश्यकता है। हमारी भारा-क्रान्त जाति को शक्ति एकमात्र स्वास्थ्य-सम्पन्न स्त्री-पुरुषों से ही प्राप्त हो सकती है।"—इन सम्मतियों को यहाँ पर उद्धृत करना इसलिए आवश्यक समझा गया है कि स्त्रियों के व्यायाम करने की महत्ता पर प्रकाश पड़े। आज दिन भारतवर्ष ने उन्नति के सभी पथों पर दृढ़तापूर्वक कदम रख दिया है। परन्तु स्त्रियों की व्यायाम द्वारा शारीरिक उन्नति की दिशा में सम्भवतः सोचा तक नहीं गया है। अतः इस दिशा में भी अविलम्ब कार्य करने की आवश्यकता है।

ठीक प्रकार से व्यायाम का अभ्यास रखने से निम्नलिखित लाभ स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा विशेष रूप से प्राप्त हो सकते हैं।

१. कई स्त्रियों में तीन खराबियाँ पाई जाती हैं। (१) मेरुदण्ड का झुका होना, (ACrooked back) (२) संकुचित स्तन (Adeformed chest) और (३) पेड़ू का लटका हुआ होना (A Hanging Belly)। इन खराबियों से यह सूचित होता है कि उस स्त्री का श्रोणिचक्र भी गर्भ-धारण के अनुपयुक्त है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ये खराबियाँ व्यायाम न करने तथा गलत शारीरिक अवस्थिति से पैदा हो जाती हैं। अतः व्यायाम द्वारा इन त्रुटियों को न होने देने से मातृत्व के महान् कर्तव्य के लिये अधिक सुविधा प्राप्त की जा सकती है।

२. एक रोग 'मेरुदण्ड की अग्रवर्ती वक्रता' (Lordosis) के नाम से विख्यात है। व्यायाम द्वारा मांस-पेशियों को दृढ़ बनाकर इसे रोका जा सकता है। क्योंकि शिथिल मांस-पेशियाँ मेरुदण्ड की ठीक 'अवस्थिति' को कायम नहीं रख सकती हैं।

३. सरल उदरच्छदा पेशियों (Recti Abdominis MusCles) को आगे लटकने से रोका जा सकता है, क्योंकि व्यायाम से वे सशक्त हो जायँगी। इस प्रकार स्त्री का सौन्दर्य सुरक्षित रह सकता है।

४. क्लोरोसिस (Chlorosis) नामक एक रोग प्रायः युवा स्त्रियों को हो जाता है। इसमें रक्त की कमी रहती है। त्वचा का रंग हरा हो जाता है। खुली वायु में नियमित व्यायाम करने से इस रोग में अदभुत लाभ होता है।

५. स्त्रियों के लिए यह वात अत्यधिक महत्त्व की है कि उनके उदर की आन्तरिक व वाह्य पेशियाँ पूर्णतया बलवती हों। प्राणायाम इस प्रकार का व्यायाम है, जिससे यह उद्देश्य बहुत अच्छी तरह सिद्ध होता है तथा रक्त-शोधन तो प्राणायाम का परम लाभ है ही।

अब हम यहाँ पर स्त्रियों के लिये अत्यन्त उपयुक्त व लाभकर कतिपय प्राणायाम व व्यायाम के अभ्यासों का निर्देश करते हैं।

१. 'प्राणायाम के अभ्यास' नामक अध्याय में प्राणायाम के पाँच अभ्यास दिये गये हैं इन अभ्यासों को भलीभाँति समझकर अपनी दिनचर्या में प्रातःकाल सम्मिलित करना चाहिये। इन पाँच अभ्यासों में प्रथम अत्यन्त सरल व अत्यधिक उपयोगी है। इसकी मैं विशेष रूप से सिफारिश कर सकता हूँ। अधिक कमजोर स्त्रियाँ इस अभ्यास से बहुत अधिक लाभ अनायास उठा सकती हैं। इन अभ्यासों का क्रम सामर्थ्यानुसार बढ़ाते रहना चाहिये।

२. 'चमत्कारी आसन' के प्रकरण में शीर्षासन और हलासन नामक दो आसन दिये गये हैं दोनों आसन स्त्रियों को समान रूप से लाभकर हैं।

गर्भावस्था में डाक्टर से सलाह लेकर परिस्थिति के अनुसार शारीरिक श्रम में परिवर्तन आवश्यक है।

३. "पेशियों के व्यायाम" नामक प्रकरण में से चुने हुये अभ्यास करने आवश्यक हैं। पिण्डलियों के दो अभ्यास दिये गये हैं। वे दोनों स्त्रियों के लिए लाभकर हैं।

जंघाओं के अभ्यास में बैठकों के दो अभ्यास दिये गये हैं। इनकी स्त्रियों के लिये आवश्यकता नहीं। सिद्धान्ततः सभी लचक पैदा करने वाले तथा उर्वस्थि (Femur) के श्रोणिचक्र के साथ के जोड़ को स्वतन्त्रता से गति देने वाले व्यायामों का निर्देश स्त्रियों को दिया जा सकता है। भ्रमण व तैरने के द्वारा जंघाओं का व्यायाम किया जा सकता है। उदर-पेशियों के लिए चार अभ्यास दिये गये हैं। चारों ही स्त्रियों के लिए अत्यन्त लाभकर हैं। मेरुदण्ड के दोनों अभ्यास भी उपयोगी हैं। भुजदण्डों के व्यायाम के लिए तीन अभ्यास दिये गये है। प्रथम अभ्यास ही स्त्रियों को सामान्य रूप से उपयोगी है। इस अभ्यास में मेरुदण्ड भूमि के समानान्तर आता है। अतः पेट पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार गर्दन के तीनों अभ्यास भी लाभकर हैं।

४. स्त्रियों के लिये तैरने का व्यायाम सर्वोत्कृष्ट है। हमारे उष्ण देश में यह भी उपयोगी हो सकता है। जिन स्त्रियों को इसकी सुविधा हो, उन्हें अवश्य इस दिव्य व्यायाम से लाभ उठाना चाहिये।

५. स्वास्थ्य-सम्बन्धी जो नियम इस पुस्तक में बताये गये हैं वे सब स्त्रियों को भी अवश्य पालनीय हैं। व्यायाम के विषय में विशेष कथन इस प्रकरण में कर ही दिया गया है।

पन्द्रह वर्ष से सत्रह वर्ष तक

इस आयु में हृदय का सामर्थ्य विशेष रूप से बढ़ता है। लड़के की ऊंचाई शीघ्रता से बढ़ जाती है। इस अवस्था में शक्ति को वढ़ाने वाले

कठिन व्यायामों का उपयोग अधिक है। इस प्रकार के व्यायामों का क्रमशः (एकदम नहीं) परन्तु नियमित रूप से बढ़ाते हुए, अभ्यास करना चाहिये। उतावलेपन में आकर नई उमर का एकदम जोश उँडेल देने से हानि तो होती ही है, साथ ही व्यायाम के प्रति सदा के लिये अरुचि हो जाती है। व्यायाम-शिक्षक का कर्तव्य है कि वह अत्यन्त चतुरता से शक्ति, साहस, चातुर्य और सहन-शक्ति के कामों में इन युवकों को दीक्षित करे। इस प्रकार से युवकों के चरित्र पर अत्युत्तम प्रभाव पड़ता है। उनकी आदतों का रुझान बुराई की ओर--जिसका इस आयु में बहुत खतरा रहता है--न होकर भलाई की तरफ होता है। इसलिये व्यायाम-शाला की यह क्रियात्मक शिक्षा चरित्र पर अच्छा प्रभाव डालती है। भुजमूल के जोड़ पर प्रभाव डालनेवाले व्यायामों से सुन्दर परिपुष्ट वक्ष का निर्माण होता है। पुस्तक में बताये ढंग की दण्ड-बैठकें भार उठाने का व्यायाम (Bar bell exercises), चतुष्काण्ड (Parallel Bar) चप्पू चलाना और पर्वत यात्रा आदि विशेष लाभ व जीवन-सञ्चार होता है। इस प्रकार के कार्य-कलापों से हम "सुन्दर शक्तिशाली युवक" निकट भविष्य में प्राप्त कर सकते हैं।

सत्रह वर्ष से बीस वर्ष तक

सुडौल, सुन्दर, परिपुष्ट और बलिष्ठ अर्थात् आदर्श-शरीर प्राप्त करने की यह आयु है। इन चार वर्षों में व्यक्ति वह शारीरिक सामर्थ्य प्राप्त कर सकता है जो चिता में जाने से पहले तक पूँजी का काम देगा। प्रत्येक माता पिता का कर्तव्य है कि इस आयु के आने पर सन्तान की शारीरिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दें। इस पुस्तक में दिये गये व्यायामों को भली प्रकार करते रहने से आदर्श शरीर प्राप्त किया जा सकता है। आसन और मेरुदण्ड के तथा पेट के व्यायाम को यथावश्यक करना चाहिये। प्राणायाम के अभ्यासों और दण्ड-बैठकों को विशेष रूप से बढ़ा देना चाहिये। ३०० बैठकें तथा १॥ सौ दण्डों तक उत्साही युवक पहुँच

सकता है। आजकल भार उठाने के (Bar bell Exercies) व्यायाम का प्रचार बढ़ रहा है। शरीर की मांस-पेशियों को विकसित करने केलिये इसका महत्व निःसन्देह बहुत है। इसे भी दिनचर्या में सम्मिलित किया जा सकता है। सप्ताह में दो दिन भार उठाने का व्यायाम ठीक रहता है।

साधारण शक्ति के "बाबू" लोग भी इस आयु में पुस्तक में दी गई पद्धति का अनुसरण कर अत्यधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। पर उन्हें अपने सामर्थ्य का ध्यान रखते हुए व्यायाम की मात्रा लेनी चाहिये। याद रखिये, अधिक व्यायाम भी व्यायाम न करने के समान ही हानिकर है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पौष्टिक भोजन तथा नियमित जीवन का महत्व इस आयु में भी बहुत अधिक है। पौष्टिक भोजन के आधार पर ही सफलता की आशा की जा सकती है।

बीस वर्ष से तीस वर्ष तक

अधिक-से-अधिक शारीरिक क्षमता, चातुर्य और शक्ति इसी आयु में प्राप्त होती है। बहुत से व्यक्ति व्यायाम की किसी एक शाखा-जैसे—भार उठाने (Weight-Lifting), घूसेबाजी (Boxoing) और पहलवानी आदि में चातुर्य प्राप्त करने की कोशिस करते हैं। उन्हे २० वर्ष के बाद ही किसी विशेष शाखा को चुनना चाहिये। इससे पूर्व सर्वतोमुखी चतुरता प्राप्त करनी चाहिये। क्योंकि एकांगी उन्नति हानिकर भी है। अपने धन्धों में लगे हुए सामान्य व्यक्ति इस पुस्तक की पद्धति का अनुसरण कर स्वास्थ्य-सौन्दर्य कायम रख सकते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों को अपने पेशे का ध्यान भी रखना चाहिए। उनके पेशे के कारण जो अंग बेकार रहते हैं, उनका व्यायाम विशेष रूप से अवश्य करना चाहिये। जैसे--दूकानदारों को पेट और टाँगों का व्यायाम, क्लर्कों को रीढ़ की हड्डी का व्यायाम और अध्यापकों को शीर्षासन विशेष रूप से उपयोगी हैं। शारीरिक व मानसिक शक्तियों के विकास में समता स्थापित करनी चाहिये।

तीस वर्ष से पैंतालीस वर्ष तक

इस अवस्था में मनुष्य गम्भीरता धारण करता है। इसका स्वभाव पर भी प्रभाव पड़ता है। अतः तेजी के व्यायामों की ओर से धीरे-धीरे ध्यान हटाकर साधारण व्यायामों में शक्ति केन्द्रित करनी चाहिए। व्यायाम का उद्देश्य शरीर को विकसित करना नहीं रह जाता। अब तो स्वास्थ्य, सौन्दर्य, कार्य-शक्ति और सहन-शक्ति को स्थिर बनाये रखना आवश्यक है। भारत में जो व्यक्ति अपने यौवन-काल में अच्छे व्यायाम-शील व खिलाड़ी रहे थे, वे भी इस समय तक व्यायाम से किनारा कर जाते हैं और गर्व के साथ अपनी गणना 'बुजुर्गों' में कर व्यायाम के प्रति उपेक्षा दिखाते हैं। ऐसे मनसा कृत्रिम 'बुजुर्गों' को ध्यान में रखना चाहिये कि ७० वर्ष से पूर्व शरीर की दृष्टि से वास्तविक बुजुर्गी प्राप्त नहीं होती। समय से पहले ऐसी बातें सोचने से शरीर वस्तुतः वृद्ध होने लगता है। महात्मा गान्धी अपनी भावना के बल पर ही युवक बने हुए थे।

इस पुस्तक में दिये गये व्यायामों की मध्यम मात्रा सामर्थ्यानुसार अवश्य ही बुढ़ापे को दूर रखने में सहायता देगी। चालीस वर्ष से ऊपर के व्यक्तियों को सायंकाल भ्रमण का नियम बना लेना चाहिए। जो व्यक्ति टेनिस जैसे खेलों को पसन्द करते हैं, वे सायंकाल इससे भी मनो-रंजन कर सकते हैं। परन्तु इस पुस्तक में बताये गये व्यायामों को छोड़ना उचित नहीं। प्रातःकाल का आध-पौन घण्टा उनके लिए सुरक्षित रहना चाहिए, क्योंकि वे व्यायाम आन्तरिक मूल्यवान् अवयवों के लिए अत्यावश्यक हैं।

पैंतालीस वर्ष से साठ वर्ष तक

पैंतालीस वर्ष के बाद धमनियों की लचक कम होने लगती है जिससे सामर्थ्य का ह्रास होना प्रारम्भ हो जाता है। आगे की अवस्था में "रक्त-चाप" (Blood Pressure) की बीमारी इसी कारण हो जाती है। इसलिये इस प्रकार की विपत्तियों से बचने के लिए उन व्यायामों का

महत्त्व बढ़ जाता है, जिनसे शरीर में तथा रक्तवाहिनियों में लचक पैदा होती है। इस दृष्टि से आसनों का व्यायाम सर्वोत्तम रहता है। इस पुस्तक की व्यायाम-पद्धति में आन्तरिक अवयवों के व्यायाम के लिए बहुत से आसन चुने गये हैं। साथ ही पेशियों के सरल व्यायाम भी हैं ही। इसलिए सरल और सादे ढङ्ग से इस आयु के व्यक्तियों के लिए यह पद्धति बराबर लाभप्रद सिद्ध होगी।

प्रतिदिन तेल-मालिश और सुविधानुसार प्रातः-सायं खुली वायु में भ्रमण की सिफारिश जोरदार शब्दों में अवश्य करनी पड़ेगी। व्यायाम अवश्य करो, परन्तु सादा और सरल। नाक से पानी पीना उत्तम है। इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। ज्यों-ज्यों आयु बढ़ेगी घूमने के व्यायाम का महत्त्व भी बढ़ता जायगा।

साठ वर्ष से ऊपर

गीता का "युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु" यह पद गाँठ बाँध लेना चाहिये। नियमित आहार-विहार से बुढ़ापे के कष्टकर आक्रमणों से अवश्य बचा जा सकता है। हम रात-दिन युवकों को आसानी से रोगी होते देखते हैं। दूसरी ओर महात्मा गांधी युक्ताहार-विहार व नियमित दिनचर्या के बल पर युवकों की तरह कार्यक्षम पाये जाते थे। इस उदाहरण से उक्त पद की महत्ता भलीभाँति स्पष्ट है।

अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि-अपनी पहली आयु में जो व्यक्ति उचित प्रकार से व्यायाम के प्रेमी रहे हैं, उन्हें वृद्धावस्था में उस व्यायाम ने लाभ पहुँचाया है। कुछ व्यक्तियों का यह ख्याल है कि "साँड़ और वेश्याओं की तरह पहलवानों का बुढ़ापा भी बुरा होता है।" इस उक्ति का आधार गलत तरीके से व्यायाम करने वाले अनाड़ी पहलवानों का उदाहरण है। न केवल नई उमर में, अपितु बुढ़ापे में भी लाभ के साथ व्यायाम जारी रखना चाहिये।

विजय लक्ष्मी प्रेस, ए० ३/७७ ए० त्रिलोचन, वाराणसी।

श्यामसुन्दर रसायनशाला प्रकाशन, गायघाट, वाराणसी
द्वारा प्रकाशित चिकित्सा एवं स्वास्थ्योपयोगी पुस्तकों का सूचीपत्र

रसायनसार	८.००
अनुपान विधि	.५०
अनुभूतयोग (पांच भाग)	५.२५
सिद्ध मृत्युञ्जय योग	१.००
प्रयोग रत्नावली	२.००
भोजन विधि (पथ्यापथ्य)	३.००
प्रारम्भिक स्वास्थ्य	.४०
आहार सूत्रावली	.५०
ग्राम्य चिकित्सा	.७५
टोटकाविज्ञान (प्रथम भाग)	.४०
टोटका विज्ञान (द्वितीय भाग)	.६०
देहातियों की तन्दुरुस्ती	.७५
मोटापा कम करने के उपाय	१.००
आरोग्य लेखाञ्जलि	१.२५
व्यायाम और शारीरिक विकास	३.००
स्वास्थ्य और सद्वृत्त	२.५०
नीम के उपयोग	१.२५
मधु के उपयोग	१.२५
मठ्ठा या छाछ के उपयोग	१.२५
आम के उपयोग	१.५०
तुलसी के उपयोग	.७५
हल्दी के उपयोग	.३५
लहसुन के उपयोग	.३५
अजवाइन के उपयोग	.३५
सौंफ के उपयोग	.३५
मेथी के उपयोग	.३५
तेजपात के उपयोग	.३५
मेथी के उपयोग	.३५
हींग के उपयोग	.३५
जीरा के उपयोग	.३५
धनिया के उपयोग	.३५
राई के उपयोग	.३५
मगरैला के उपयोग	.३५
प्याज के उपयोग	.३५
आंवला के उपयोग	.३५
नीबू के उपयोग	.३५
गूलर के उपयोग	.३५
मौसमी सात बीमारियाँ	.३५
ऋतुएँ और स्वास्थ्य	.७५
स्वच्छता और स्वास्थ्य	.३०
व्यायाम और स्वास्थ्य	.३०
भोजन और स्वास्थ्य	.३०
मनोवेग और स्वास्थ्य	.३०
मादक वस्तुएँ और स्वा०	.३०
आचार विचार और स्वा०	.३०
प्रसूता और शिशु-परिचर्या	.६०

सजिल्द पुस्तकों के सेट

अनुभूतयोग पांच भाग	५.५०
मसालों के उपयोग	५.५०
स्वास्थ्य निर्माण के साधन	६.५०
हमारा स्वास्थ्य और आहार	४.००
स्वास्थ्य साधन	२.००
हम कैसे स्वस्थ्य रहें	४.००

आगामी प्रकाशन

काममतत्व दर्शन
आरोग्य लोकोक्तियाँ
घरेलू नुसखे
रसायनसार परिशिष्ट
[illegible] चिकित्सा विज्ञान

ग्राहकों को सुविधा के लिए

हमारे प्रकाशन की भिन्न-भिन्न पुस्तकों के निम्नलिखित सजिल्द सेट

---

(१) अनुभूत योग : पाँच भाग का मूल्य ५-५०

(२) मसालों के उपयोग : १६ पुस्तकों का मूल्य ५-५०

(हल्दी, लहसुन, अजवाइन, सौफ, अदरख, मेथी, तेजपात, हींग, जीरा, धनिया, राई, मगरैला, प्याज, नीबू, आँवला और गूलर के उपयोग)

(३) स्वास्थ्य साधन : ६ पुस्तकों का मूल्य २-००

(स्वच्छता, व्यायाम, भोजन, मनोवेग, मादक-वस्तुएँ एवं आचार-विचार और स्वास्थ्य)

(४) स्वास्थ्यनिर्माण के साधन : ५ पुस्तकों का मू० ६-५०

(नीम, मधु, मट्ठा, आम और तुलसी के उपयोग)

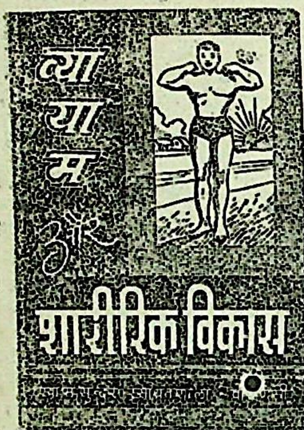
(५) हम कैसे स्वस्थ रहें : ५ पुस्तकों का मूल्य ४-००।

(प्रारम्भिक स्वास्थ्य, ऋतुएँ और स्वास्थ्य, ग्राम्य चिकित्सा, आरोग्य लेखाञ्जलि एवं प्रसूता और शिशु-परिचर्या)

(६) हमारा स्वास्थ्य और आहार : ६ पु० का मूल्य ४-००

(मोटापा कम करने के उपाय, देहातियों की तन्दुरुस्ती, आहार सूत्रावली, टोटका विज्ञान भाग १ व २ और मौसमी सात बीमारियाँ)

श्यामसुन्दर रसायनशाला प्रकाशन, गायघाट, वाराणसी



व्यायाम और शारीरिक विकास

तृ० सं० : मूल्य : ३-००

प्रस्तुत पुस्तक व्यायाम-सम्बन्धी प्राच्य और पाश्चात्य दोनों विचार-धाराओं के गंभीर अध्ययन और मनन का परिणाम है। इसमें मनुष्य के शरीर का विवरण सहित सचित्र वर्णन देकर व्यायाम की आवश्यकता शास्त्रीय ढंग से समझायी गयी है। संतुलित भोजन का चुनाव, व्यायाम और सौन्दर्यवृद्धि, मन और शरीर, भिन्न-भिन्न रोगों के लिए चमत्कारी आसन, प्राणायाम के अभ्यास और पेशियों के व्यायाम आदि आकर्षक विषय सचित्र दिये गये हैं। प्रत्येक स्त्री-पुरुष के बड़े काम की है

स्वास्थ्य और सद्वृत्त

द्वि० सं०: मूल्य: २—५०

मनुष्य को दीर्घायु एवं आरोग्यता की चाह सदा रहती है। उसके लिये मनुष्य को क्या करना चाहिये, इसकी पूरी जानकारी इस पुस्तक में दी गयी है। मन और आत्मा का शरीर के साथ कैसा सम्बन्ध है, मनुष्य की दिनचर्या कैसी होनी चाहिये और ऋतु के अनुसार किस प्रकार आहार-विहार करना चाहिये तथा शारीरिक, सामाजिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य का वर्णन मनोरंजक ढंग से सरल भाषा में किया गया है।



श्यामसुन्दर रसायनशाला प्रकाशन, गायघाट, वाराणसी

हमारे प्रकाशन : विद्वानों की दृष्टि में

"आपके संग्रह का जो कुछ परिचय मैं कर सका हूँ, उससे आपके परिश्रम का नाप मुझको मिला है। संग्रह उत्तम लगा। मैं तो चाहता हूँ, प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी आपके संग्रह का अध्ययन करे। पुस्तकें विद्यालयों में स्थान लेने लायक मानता हूँ। पुस्तकों की उपयोगिता अधिक है। आपके प्रयत्न के लिए धन्यवाद।" —राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी

"भीलवाड़ा में मुझे जो पुस्तकें दी गईं उन्हें मैंने पढ़ा और उपयोगी पाया। मैं आशा करता हूं कि ग्रामीण लोग, जिनके लिए ये पुस्तकें लिखी गई हैं, इनसे अधिकाधिक लाभ उठायेंगे।"

—गुलजारीलाल नन्दा, केन्द्रीय गृह मंत्री, नई दिल्ली

आपकी उपयोगी पुस्तकों का अधिक से अधिक प्रचार प्रसार हो वह आवश्यक है। मैं इनकी हर तरह से सफलता चाहता हूँ।"

—अक्षय कुमार करण, सचिव खा. ग्रा. आ., बम्बई

"श्यामसुन्दर रसायनशाला के अध्यक्ष श्री उमेदीलाल वैद्य ने जनोपयोगी ग्रन्थ छपवाकर वैद्य समाज और जनता की बड़ी सेवा और उपकार किया है। इसलिए मैं इनको धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि वे इस प्रकार आयुर्वेद की सेवा करते रहेंगे।"

—वैद्य यादवजी विक्रमजी आचार्य, बम्बई

"श्यामसुन्दर रसायनशाला ने स्वास्थ्य और चिकित्सा के सम्बन्ध में कितनी ही पुस्तकें भिन्न-भिन्न लेखकों से लिखवाकर प्रकाशित की हैं। मैं इस कार्य के लिए धन्यवाद देता हूँ और इन शुभ प्रयत्नों की सफलता चाहता हूँ" —जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, प्रयाग

"श्री उमेदीलाल जी ने अपने नानाजी की रसायनशाला एवं पुस्तक-प्रकाशनादि कार्य को आगे बढ़ाकर स्थायी रूप प्रदान किया है। बड़ी अच्छी आयुर्वेदसेवा का वृत ही ग्रहण कर लिया। परमपिता परमात्मा की दया से वे फूलते-फलते रहें, यह मेरी हार्दिक कामना है।

—गोवर्धन शर्मा छांगाणी, नागपुर

"आयुर्वेदिक सिद्धान्तों के अनुसार जन-साधारण में स्वस्थवृत्त के प्रचार की दृष्टि से श्यामसुन्दर रसायनशाला की प्रकाशित पुस्तकें बड़ी उपयोगी हैं।" —आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका, दिल्ली, जून ५०

"मुझे विश्वास है कि यह रसायनशाला शारीरिक स्वास्थ्य-वृद्धि के लिए जिस प्रकार औषधियाँ देता है, बौद्धिक-वृद्धि के लिए उसी प्रकार अच्छे-अच्छे ग्रन्थ प्रकाशित करके हिन्दी को अलंकृत करता रहेगा।"

—रामनारायण मिश्र, काशी

श्यामसुन्दर रसायनशाला प्रकाशन, गायघाट, वाराणसी

हमारे प्रकाशन के प्रमुख विक्रेता

१—सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी।

(इनसे सम्बन्धित सभी पुस्तक-विक्रेताओं द्वारा भी प्राप्त हैं।)

२—चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी।

३—गंगा-पुस्तकालय, गायघाट, वाराणसी।

४—हिन्दी प्रचारक संस्थान, पिशाचमोचन, वाराणसी।

५—मोतीलाल बनारसीदास, चौक, वाराणसी।

६—हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, चौक, वाराणसी।

७—दिगम्बर जैन पुस्तकालय, मु० श्री महावीरजी (सवाई माधोपुर)।

८—हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, मुरादपुर, पटना।

९—गांधी शान्ति प्रतिष्ठान केन्द्र, १५।२३९, सिविल लाइन्स, कानपुर)।

१०—एक्मे एण्ड कम्पनी, जैन हाऊस, ८।१, एस्पेनेडईस्ट, कलकत्ता–१।

११—श्री दाताराम मक्कड़, ७४, जकरिया स्ट्रीट, कलकत्ता-७।

१२—गांधी साहित्य प्रकाशन, गांधी भवन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ–१।

१३—प्रकाश बुकडिपो, श्रीरामरोड, लखनऊ।

१४—सर्वोदय साहित्य भण्डार, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर।

१५—निसर्गोपचार आश्रम, उरुलीकांचन (पूना)।

१६—सर्वोदय साहित्य भंडार, गांधीआश्रम खादीभवन, राजामंडी, आगरा।

१७—गांधी पुस्तक घर, राजघाट, नई दिल्ली।

१८—वाणीमन्दिर, सवाईमानसिंह हाइवे, जयपुर-३ (राजस्थान)।

१९—ग्रामोद्योग भंडार, आनन्द निकेतन, नकटिया, बरेली।

२०—परमानन्द आर्य, आर्य साहित्य मन्दिर, आर्यनगर, गोरखपुर।

२१—जवाहरलाल नेहरू पुस्तक भवन, चरगांवा, गोरखपुर।

२२—सत्साहित्य विक्रयकेन्द्र, ५ आयंन स्ट्रीट, ब्यावर (राजस्थान)।

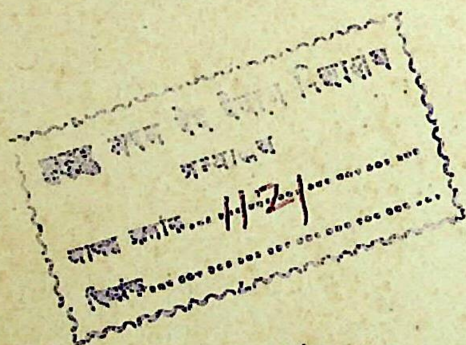
२३—श्री चन्द्रप्रकाश जी, ३४ ताशकन्द मार्ग, इलाहाबाद।

२४—ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामूभांजारोड, अलीगढ़।

२५—धनवन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)।

२६—साधना प्रकाशन, १७/१११ नई रोहतक रोड, नई दिल्ली—१५





पारिवारिक चिकित्सा एवं स्वास्थ्योपयोगी हमारी उत्कृष्ट पुस्तकें

१. रसायनसार ८.००
२. अनुपान विधि .५०
३. अनुभूतयोग (पाँचभाग) ५.२५
४. सिद्ध मृत्युञ्जय योग १,००
५. प्रयोग रत्नावली २.००
६. भोजन-विधि (पथ्यापथ्य) १'००
७. प्रारम्भिक स्वास्थ्य '४०
८. आहार सूत्रावली '५०
९. ग्राम्य चिकित्सा '७५
१०. टोटकाविज्ञान प्रथमभाग '४०
११. ,, द्वितीयभाग '६०
१२. देहातियों की तन्दुरुस्ती '७५
१३. मोटापा कम करने के उपाय १'००
१४. आरोग्य लेखाञ्जलि १'२५
१५. व्यायाम और शारीरिक विकास ३'००
१६. स्वास्थ्य और सद्वृत्त २'५०
१७. नीम के उपयोग १'२५
१८. मधु के उपयोग १'२५
१९. मट्ठा या छाछ के उपयोग १'२५
२०. तुलसी के उपयोग '७५
२१. हल्दी के उपयोग '३५
२२. लहसुन के उपयोग '३५
२३. अजवाइन के उपयोग '३५
२४. सौंफ के उपयोग '३५
२५. अदरख के उपयोग '३५
२६. तेजपात के उपयोग '३५
२७. मेथी के उपयोग '३५
२८. हींग के उपयोग '३५
२९. जीरा के उपयोग '३५
३०. धनिया के उपयोग '३५
३१. राई के उपयोग '३५
३२. मगरैला के उपयोग '३५
३३. प्याज के उपयोग '३५
३४. आँवला के उपयोग '३५
३५. नीबू के उपयोग '३५
३६. गूलर के उपयोग '३५
३७. मसालों के उपयोग (१६पु० सजि०) ५'५०
३८. मौसमी सात बीमारियाँ '३५
३९. ऋतुएँ और स्वास्थ्य '६०
४०. स्वच्छता और स्वास्थ्य '३०
४१. व्यायाम और स्वास्थ्य '३०
४२. भोजन और स्वास्थ्य '३०
४३. मनोवेग और स्वास्थ्य '३०
४४. मादक वस्तुएँ और स्वास्थ्य '३०
४५. आचार विचार और स्वास्थ्य '३०
४६. स्वास्थ्य साधन (६ पु० सजि०) २'००
४७. आम के उपयोग १'५०
४८. प्रसूता और शिशु-परिचर्या '६०

आगामी प्रकाशन

१. आरोग्य लोकोक्तियाँ
२. घरेलू नुस्खे
३. रसायनसार परिशिष्ट
४. प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान

श्यामसुन्दर रसायनशाला प्रकाशन, गायघाट, वाराणसी